प्रकाशक
ओम् प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी,
बनारस ।

प्रथम संस्करण—१९५६
मूल्य : साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
ज्वाला प्रिंटिंग प्रेस,
गायघाट, बनारस ।

विषय-सूची

शिशु विश्व की खोज में

सं०	विषय			पृष्ठांक
१.	विशिष्ट वेदन	...	...	१
२.	प्रारम्भिक मानसिक विकास	...	...	२
३.	प्रारम्भिक बोधावस्था	...	...	६
४.	अविभावक क्रियायें	...	...	१४
५.	मूल कल्पना	...	...	१६
६.	अभागा शिशु	...	...	२२
७.	स्मृति, कल्पना और खेल	...	...	२३
८.	सहानुभूति, प्रवणता या सूच्यता और आत्म-नियंत्रण	...	...	२६
९.	तर्क-शक्ति	...	...	२६
१०.	भाषा	...	...	३०
११.	परिशिष्ट (कारक-बोधन, क्रिया-विकास, इन्द्रिय-संवेदन, भाषा-विकास)	...	...	३६

—::o::—

शिशु का बौद्धिक विकास

सं०	विषय			पृष्ठांक
१.	शिशु का बौद्धिक विकास	...	...	४१
२.	परिमाणित निकष	...	...	४२
३.	बाल-परीक्षण	...	...	४६
४.	बौद्धिक विकास-परीक्षण की कुछ रूप-रेखा	...	...	४६
५.	आप का शिशु	...	...	६५-१०४

शिशु और खेल

१.	शिशु और खेल	...	...	१०६
२.	खेल की आवश्यकता	...	...	१०९
३.	प्रारम्भ के खेल	...	...	११०
४.	खेलों के प्रकार	...	...	१११
५.	वस्तु विज्ञान के खेल	...	...	११२
६.	खेल और काम	...	...	११३
७.	चीजों का बनाना	...	...	११४
८.	विवात्मक और काल्पनिक खेल	...	...	११६
९.	खेल की सामग्री	...	...	११८

———:०:———

शिशु विश्व की खोज में

आपका शिशु—

विशिष्ट-वेदन

शिशु-आगमन

[१]

विशिष्ट वेदन

शिशु रोते-रोते इस संसार में प्रवेश करता है और सो जाता है। हमारी तरह वह सचेत नहीं है। न उसमें सुनने की शक्ति है और न देखने की। भूख और प्यास लगने या आन्तरिक वेदना से पीड़ित होने या मलमूत्र से गीला होने पर वह रोने लगता है। क्षुधा तृप्त होने से, वेदना के दूर होने से और सूखे कपड़े पर सुलाने से वह चुप हो जाता है और फिर सुख की नींद सो जाता है। सोना, साँस लेना और मल-मूत्र का त्याग करना ही आजकल उसका मुख्य काम है। माता के उदर में विशेष नलियों और क्रियाओं के द्वारा आज तक स्वाभाविक रीति से यह सब काम होता था। जन्म लेते ही वह माता से विलग होकर स्वतन्त्र हो गया है और उसे अब ये काम स्वयं करने पड़ते हैं।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि नवजात शिशु का अस्सी प्रतिशत समय सोने में ही व्यतीत होता है। अपनी जाग्रतावस्था में वह सक्रिय रहता है। उसे हम हाथ-पाँव छटपटाते, ओठ हिलाते और आँख टिमटिमाते हुए पाते हैं।

अनेक अमेरिकन चिकित्सकों का यह भी कहना है कि ऐसे भी शिशु देखे गये हैं जो जन्म के बीस मिनट बाद छींकने और अँगड़ाई लेने लगे। कई शिशु पैदा होते ही अँगूठा चूसने लगते हैं और एक टक रोशनी को देखने लगते हैं। यदि नाक और मुँह के पास चादर आने से हवा रुक जाती है तो शिशु को साँस लेने में कठिनाई अनुभव होती है। कई शिशु अपना मुँह उस दिशा की ओर फिराते पाये गये हैं जिधर से हवा आती हो। लेकिन उनका मत है कि इस प्रकार के सक्रिय शिशु बहुत कम होते हैं। अधिकांश शिशु ऐसे होते हैं जिनमें चेतना धीरे-धीरे जाग्रत होती है।

दृष्टि—नवजात शिशु का अधिकांश समय सोने में बीतता है। जाग्रतावस्था में जब वह आँख खोलता है और देखने का प्रयत्न करता है, तो उसे सब कुछ धुँधला दिखाई देता है। मन्द प्रकाश उसे पसन्द है, तेज प्रकाश से उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। रङ्ग का बोध उसे अभी नहीं होता। प्रकाश और अन्धकार उसे दिखाई अवश्य देते हैं लेकिन इनका अनुमान और ज्ञान उसे नहीं है। जब वह आँख खोलता है तो उसे दिखाई अवश्य देता है पर वह आँख देखने के लिये नहीं खोलता। यह उसे धीरे धीरे सीखना है।

श्रवण—शिशु में सुनने की भी शक्ति नहीं, होती क्योंकि जन्म के समय उसके कान में एक तरल पदार्थ भरा रहता है। श्रवणवेदन के परीक्षण के निमित्त मनोवैज्ञानिकों ने शिशु के कान के निकट अनेक प्रकार के शब्द किये और बाजे बजाये। लेकिन शिशु को कुछ भी सुनाई नहीं दिया। जोर की आहट सुनकर शिशु चौंक अवश्य उठता है लेकिन उसे इस आहट या शब्द में भेद नहीं मालूम होता।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह भी कथन है कि शिशु में श्रवणवेदना है। उसकी अवस्था के अनुसार उसे सुनाई देता है। जाग्रतावस्था और शान्त दशा में उसे निद्रावस्था की अपेक्षा अधिक सुनाई देता है।

कई लोगों का यह भी मत है कि जन्म के पश्चात् दस मिनट तक शिशु को कुछ भी नहीं सुनाई देता। शब्द एक आहट मात्र है, उसके भेद का वह अनुभव नहीं करता।

स्वाद और गंध—स्वाद और गंध का घनिष्ट सम्बन्ध है। गंध से ही स्वाद पहिचाना जाता है। यदि हम अपनी नासिका बन्द कर लें और वायु को साँस की नली में जाने से रोक दें तो हम किसी खाद्य पदार्थ के स्वाद का अनुभव नहीं कर सकते। मुँह की आकृति देखकर ही हम यह बता सकते हैं कि अमुक वस्तु मीठी, खट्टी या कड़वी है, लेकिन शिशु को इनका बोध नहीं रहता। उसके लिये कुनीन और चीनी एक समान है। यदि कोई बहुत गाढ़ी वस्तु उसकी जिह्वा में रख दी जाय तो उसकी मुखाकृति ऐसी हो जाती है जिससे मालूम पड़ता है कि वह उसे पसन्द नहीं करता। जन्म के दूसरे दिन से ही शिशु को स्वाद और गन्ध का अनुभव कुछ कुछ होने लगता है। लेकिन गन्ध-वेदन का विकास स्वाद वेदन की अपेक्षा धीरे-धीरे होता है।

स्पर्श, ऊष्म मान और दुःख वेदन—शिशु के मुँह, हथेली और पगतलियों में स्पर्शवेदन रहता है लेकिन बहुत कम। शिशु को अधिक गर्मी और अधिक ठण्ढी का अनुभव होता है—उसका पूर्ण बोध या ज्ञान नहीं। वेदन अवछिन्न रहते हैं। शिशु के लिये उनका कुछ अर्थ नहीं है। शिशु यह भी नहीं जानता कि उसका शरीर है या नहीं। वह सिर घुमाता है या सिर के लुढ़कने मात्र का अनुभव करता है लेकिन उसके लिये इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है। वह केवल वेदन-मात्र ही है। शिशु को यह भी प्रतीत नहीं कि उसके सिर है भी।

दुःख-वेदन शरीर के पुरोवर्ती भाग में तो नहीं किन्तु पश्चाद्वर्ती भाग में होता है। जिस शिशु का ज्येष्ठ मज्जा नहीं होता उसे दुःखवेदन और स्पर्शवेदन होता है, वह अधिक उष्णता और शीत अनुभव करता है लेकिन उसमें प्रकाश, गन्ध स्वाद और ऊष्म मान वेदन नहीं रहता।

[२]

प्रारम्भिक मानसिक विकास

शिशु के प्रारम्भिक मानसिक विकास का पता लगाना अत्यन्त कठिन है। मनोवैज्ञानिक इस सम्बन्ध में जितना भी पता लगा पाये हैं वह केवल आनुमानिक है। हम प्रौढ़ लोगों की मानसिक वृत्ति से परिचित रहते हैं। शिशु की मानसिक वृत्ति भी उसी तरह बढ़ती है। हम मस्तिष्क की बनावट और उसके विकास से भी परिचित हैं क्योंकि इस सम्बन्ध में बड़ी खोज हो चुकी है। शिशु परिस्थिति के अनुसार किस प्रकार प्रत्याघात करता है इसे भी हम देख सकते हैं और परिस्थिति बदलने से उसके प्रत्याघात के फलों का परीक्षण भी कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार के अनुमान से उसके मानसिक विकास का ठीक-ठीक पता नहीं लगा पाते। शिशु की बोधनक्रिया हमसे छिपी है। हम उसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकते। उसके विशिष्ट वेदन भी उसकी अवस्था के अनुसार ऐसी तीव्र गति से बदलते रहते हैं कि हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते।

पहिचानना—मानसिक विकास का सबसे प्रथम और महत्त्वपूर्ण चिह्न शिशु का पर्यवेक्षण है। अर्थात् शिशु लोगों को ध्यान से देखकर पहिचानने लगता है। जिन लोगों को वह बार-बार देखता है उन्हें देखकर पहिचानने लगता है, प्रसन्न होता है और मुसकुराता है और अपरिचित लोगों को देखते ही रोने लगता है और मुँह बनाता है। अब उसकी वेदनशक्ति कुछ-कुछ महत्त्व रखने लगी है और समझा जाता है कि शिशु विश्व की खोज में निकल पड़ा है।

मुसकान—शिशु का मुसकुराना कितना मधुर और आकर्षक होता है। कवियों ने इस विषय को लेकर कितनी ही भावमयी कवितायें रच डाली हैं। परिचित लोगों को देखते ही शिशु मुसकुराने लगता है। यह मुसकान बड़े महत्त्व का है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि एक से छः दिन के शिशु के तलवों को गुदगुदाने से शिशु मुसकुराने लगता है और पन्द्रह से उन्नीसवें दिन तक तो यह मुसकुराहट हँसने में परिणत हो जाती है। दूध की बोतल दूर से देखते ही शिशु मुसकुराने लगता है।

उसका ज्ञान केवल मुसकुराने तक ही सीमित नहीं है—अब वह बड़े ध्यान से, एकाग्र दृष्टि से जो भी चीज उसके सामने आती है उसे देखता है। उस निरीक्षण और परीक्षण से उसे वस्तुभेद का ज्ञान होने लगता है। वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखता है और उनकी वास्तविकता भी समझने लगता है। जैसे बोतल देखते ही उसे दूध की याद आ जाती है।

वस्तु-निरीक्षण—दृष्टि द्वारा ही हमें संसार का वस्तुज्ञान होता है। जब तक हम एकाग्र दृष्टि से किसी वस्तु को नहीं देखते हैं, उसका बोध हमें अच्छी तरह नहीं हो सकता। वेग से चलनेवाली वस्तु का हम तब तक अच्छी तरह निरीक्षण नहीं कर सकते जब तक हम अपनी दृष्टि और सिर को उसी तरह घुमा-फिराकर न ले जा सकें।

ऊपर लिखा गया है कि जन्म के समय शिशु को प्रत्येक वस्तु धुँधली दिखाई देती है। वह देखता अवश्य है पर उसमें पहिचानने की शक्ति नहीं होती किसी वस्तु का निरीक्षण करने के लिये हमें एकटक उसी वस्तु को देखना पड़ता है जिससे उस वस्तु का बिम्ब हमारे चक्षु के रूप-विवेक में पड़े। शिशु भी

प्रकाश को एकटक देखकर अपने रूप-विवेक को दृढ़ बनाता है जिससे उसे धीरे-धीरे,वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगती है। जिस ओर प्रकाश हो उधर ही शिशु दृष्टि फेरता है। निकट की और बड़ी वस्तु को शिशु ध्यान से देखने लगता है। यदि हम किसी वस्तु को उसके सामने रखकर उसे दायें या बायें ले जावें तो उसकी दृष्टि भी वस्तु की ओर फिरती रहती है।

एक महीने के उपरान्त शिशु में देखने की चाह इतनी बढ़ जाती है कि वह अपने सिर को उसी ओर घुमाता है जिधर वस्तु है, ताकि वस्तु का बिम्ब ठीक रूप-विवक पर पड़े। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मज्जा तंतु में साहचर्य मार्ग उत्पन्न हो रहा है। ऐन्द्रिय या वैदनिक आघात समयोज गति उत्पन्न करने लगते हैं। इससे ऐन्द्रिय (वैदनिक) बिंव केन्द्र में और चक्षु तथा सिर के कार्यकारी केन्द्र से सम्बन्ध स्थापित होना प्रारम्भ हो जाता है।

अब वह चुपचाप लेटे रहना पसन्द नहीं करता। वह चाहता है कि उसे गोद में लेकर अन्दर और बाहर घुमाया जाय। जिससे वह विश्व को भली-भाँति देख सके और उसकी प्रत्येक वस्तु से अच्छी प्रकार जानकारी कर सके। वह प्रत्येक वस्तु को देखने के लिये अपनी गरदन इधर-उधर घुमाता है और बड़ी उत्सुकता और विस्मय से देखता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु से परिचित होने के लिये उसे कठिन प्रयत्न करना पड़ता है। उसे प्रत्येक बात जानने की उतावली रहती है। हमें उसे सावधान करना चाहिये जिससे वह थके नहीं।

शिशु-संसार—शिशु-संसार अभी तक कुछ ही वस्तुओं तक परिमित है। इस संसार में उसे वस्तुएँ तो दिखाई देती हैं लेकिन इन वस्तुओं की रूप-रेखा से वह परिचित नहीं हो पाता। शिशु कभी उन्हें बड़े और कभी छोटे आकार में देखता है। माता का मुँह ही उसके लिये सब कुछ है। वह उस मुँह को बड़े ध्यान से देखता है और उसे देखकर मुसकुराता है। जब धीरे-धीरे स्मृति जाग्रत होती है तो उसे कुछ वस्तुओं के देखने से प्रसन्नता होती है। उसकी यह प्रसन्नता उसके अभिज्ञान का सूचक है अर्थात् उसमें पहिचानने की शक्ति कुछ कुछ आ गई है।

वह पहिचानता अवश्य है पर अभी तक उसे रंग का बोध नहीं है। प्रत्येक

वस्तु उसे काली, भूरी या सफेद दिखाई देती है। सात मास के उपरान्त शिशु को रंगवेदन होता है लेकिन जब तक वह दो वर्ष का नहीं हो जाता, उसे पूर्ण रूप से रंग का ज्ञान नहीं हो पाता।

खोज में प्रगति—दो मास के अन्त में शिशु माता और पिता के मुँह को भली भाँति पहिचानने लगता है। उसे अब मित्रता का अनुभव होने लगता है। यदि दो मनुष्य शिशु के अगल-बगल बैठकर उसकी दृष्टि का परीक्षण करें तो वे यह देख सकेंगे कि शिशु पहले एक को भली-भाँति देखकर अपनी दृष्टि दूसरे मुँह की ओर फेरता है।

जैसे जैसे संविधान-योजन में प्रगति होती जाती है, वस्तुओं की रूप-रेखा भी स्थिर होती रहती है और उसे निकट और दूर का भी ज्ञान होने लगता है।

शिशु अब पहिचानने ही नहीं लगा है वरन वह प्रतीक्षा भी करने लगा है। माता को दूर से आते देखकर वह उसे पहिचान लेता है और उसका मुँह देखने को बड़ा उत्सुक रहता है।

वस्तु-ज्ञान का महत्त्व—चीजों को देखकर हमें उसकी रूप-रेखा का ज्ञान होता है। हम देखकर यह भी बता सकते हैं कि अमुक वस्तु भारी होगी या हल्की। मुलायम होगी या खुरदरी। लेकिन शिशु अपनी दृष्टि वेदन द्वारा यह सब नहीं बतला सकता। इसके लिये उसे स्पर्शानुभव और स्नायुवेदन का दृष्टि-वेदन के साथ सहयोजन करने की आवश्यकता है।

शिशु जब किसी वस्तु को देखकर उसे समझने की कोशिश करता है तो वह अपनी बुद्धि से काम लेता है। जब वह देखने तथा समझने की अवस्था में चीखने लगता है तब यह समझ लेना चाहिये कि उसका यह चीखना उसके मानसिक श्रम के कारण है।

स्पर्शवेदन में प्रगति—शिशु के ओठ और जिह्वा वेदनक्षम अंग हैं। बहुधा शिशु हाथ को मुँह में डालता है। दूसरे मास के अन्त में शिशु अपनी जिह्वा से ओठों को चाटता है और ऐसा करने में उसे विशेष आनन्द प्रतीत होता है।

आपका शिशु—

स्पर्श-वेदन में प्रगति

दृष्टि द्वारा ही हमें संसार का वस्तु ज्ञान होता है

[पृ० ७]

शीघ्र ही शिशु हाथ से स्पर्श करने लगता है, अपनी माता की धोती का छोर पकड़ उससे अपने हाथों को मलता है। यह क्रिया उसमें स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होती है और वह अन्यमनस्क होकर यह क्रिया करता है। उसका सारा ध्यान इसी वेदन पर रहता है।

तीसरे महीने में वह किसी प्रयोजन से जो भी वस्तु उसके समीप आती है उसे पकड़ता है और धीरे-धीरे पकड़ी हुई वस्तु को अपने मुँह में डालता है। जब उसे कुछ नहीं मिलता तो अपने अँगूठे को ही पकड़कर मुँह में डालकर चूसने लगता है। कभी-कभी एक हाथ से दूसरे को पकड़कर मुँह में ले जाता है। बहुधा दोनों हाथ मिल-जुलकर ही काम करते पाये गये हैं।

दृष्टि और स्पर्श का सम्बन्ध—अभी तक शिशु का ध्यान अपने अंगों की ओर नहीं गया। उसे यह भी पता नहीं कि उसका शरीर है भी या नहीं। जब वह चार मास का होता है तो उसे अपने हाथों का अनुभव होता है और बड़े ध्यान से वह अपने हाथों को देखता रहता है। कितना आनन्द उसे अपने नन्हें-नन्हें हाथों और छोटी उँगलियों को देखकर होता होगा जिनको पकड़कर वह खेलता है और बड़े चाव से मुँह में डालता है। कभी कभी वह अपने हाथ पकड़ने के बहाने किसी और वस्तु को पकड़ता है। इससे उसका स्पर्शवेदन बढ़ता ही जाता है। जो भी वस्तु उसके समीप आती है या जिसे वह देख पाता है उसे पकड़ने की चेष्टा करता है। अपने इसप्रयत्न में वह कभी सफल होता है और कभी असफल।

उतनी दृष्टि से नहीं हमें अपने हाथों से वस्तुओं की जितनी जानकारी प्राप्त होती है। अतःशिशु को ऐसी सामग्री देते रहना चाहिये जिसे पकड़कर वह अपने मुँह तक पहुँचा सके। माता का मुँह भी शिशु के लिये एक आकर्षक खिलौना है जिसके सारे भाग का निरीक्षण-परीक्षण शिशु अपनी कोमल-कोमल उँगलियों से करता रहता है।

कितने हर्ष का है वह दिन जब शिशु अपने पाँवों का पता लगा पाता है। अपने पाँव के अँगूठे को पकड़कर मुँह में डालने में उसे अपार हर्ष होता है।

शरीर के विविध अंगों की खोज में वर्ष के बाकी महीने बीतते हैं। वर्ष के

अन्त तक भी वह सारे अङ्गों को खोज नहीं पाता। घिसने या खुरच जाने से यदि कुछ पीड़ा होती है तो वह जल्दी चली जाती है। उसको पीड़ा सताती नहीं।

बौद्धिक विकास की दृष्टि से दृष्टि और स्पर्शवेदन अधिक महत्त्व रखते हैं। उसका सारा समय अब देखने और स्पर्श करने में ही व्यतीत होता है।

स्वाद और गन्ध—शिशु को पेट भरने से मतलब रहता है, स्वाद से नहीं। खेल के आनन्द में शिशु 'भूख' भूल जाता है। अनेक शिशु मीठा पसन्द करते हैं और अनेक नमकीन।

एक वर्ष तक गन्ध का वही हाल रहता है जो स्वाद का।

रंग-भेद से तो उसे कुछ मतलब ही नहीं रहता।

श्रवणशक्ति—प्रारम्भ के महीनों में 'ध्वनि' कुछ माने नहीं रखती। भीरु बालक आहट सुनते ही घबड़ा उठता है। वाद्य संगीत सुनने में उसे अपार आनन्द होता है। ध्वनि या शब्द सुनते-सुनते उसमें रूपवेदन की जाग्रति होती है। माता का बोलना सुनकर उसकी ओर दृष्टि फेरता है। माता की वाणी सुनते ही शिशु को उसकी आकृति का ध्यान हो जाता है। जिस दिशा में माता बोल रही हो उसी दिशा की ओर वह देखने लगता है।

ध्वनि सुनते सुनते शिशु भी ध्वनि निकालने का प्रयत्न करता है। ध्वनि या तो वह स्वयं अपनी ध्वनि रज्जु से निकालता है या किसी चीज को पकड़ कर बार बार जमीन में पटककर या झुनझुने को हिलाकर निकालता है। अपनी इस बहादुरी से उसे अपार आनन्द होता है।

एक वर्ष की खोज—एक वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करते-करते शिशु विश्व से बहुत कुछ परिचित हो जाता है। वह वस्तु को देखते ही उसे छूना भी चाहता है और चखना भी। वह अब यह समझ जाता है कि विश्व में अनेक पदार्थ हैं। यह पदार्थ क्या है, कैसे बना है, इनका क्या प्रयोजन है, यह सब जानने के लिये वह बड़ा उत्सुक रहता है। अपने शरीर के अङ्गों को तो उसने खोज ही लिया है, अब उनके द्वारा विश्व की खोज करने के लिये वह अग्रसर होने लगता है। उसका खोज का यह काल बड़े आनन्द और उल्लास में व्यतीत होता रहता है।

[३]

प्रारम्भिक वोधावस्था

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिशु दो वर्गों में बँटे जा सकते हैं :—

(१) प्रथमवर्ग में कारक-वोधावस्थावाले या क्रियाशील और (२) द्वितीय वर्ग में वैदनिक प्रतिक्रिया वाले शिशु ।

क्रियाशील या कारक वोधावस्था वर्ग के शिशु में काम करने की शक्ति पहले आती है और विचार-विमर्श की वाद को । उसे 'क्रिया' के द्वारा ही वस्तु का वोध होता है । दूसरे वर्ग के शिशु भाव-प्रदर्शन और विचार-विमर्श से वस्तु का वोध करते हैं ।

क्रियाशील शिशु जल्दी हाथ-पाँव छटपटाने लगता है, लोट पोट लेता है, गरदन उठाता है, चीजों को पकड़ कर पटकता है और मुँह में डालता है, घुटनों के वल चलकर सारे कमरे की परिक्रमा करता है और स्वयं खड़ा होकर चलने लगता है । वैदनिक प्रतिक्रिया वाला शिशु यह सव सारी क्रिया देर से करता है लेकिन वोलने में और भाव प्रदर्शन करने में वह प्रथम वर्ग के शिशु से वाजी मार लेता है ।

शिशु की पूर्व प्रेरणात्मक क्रिया के तीन पहलू होते हैं :—

(अ) आकस्मिक या अहेतुक, (व) प्रतिक्षेपी और (स) सहज प्रेरणात्मक

इन क्रियाओं के द्वारा ज्ञानहिनी नाड़ी जो ऊपर को जाती है, मस्तिष्क को उत्तेजित करके मजवूत वनाती है । जव मस्तिष्क मजवूत होता है तो उत्तेजना शक्ति शीघ्र आती है और वह क्रियावाहक नाड़ियों को काम करने के लिये आज्ञा देती है ।

आकस्मिक या अहेतुक क्रिया—यह इस प्रकार की क्रिया है जो स्वाभाविक रीति से होती है । जैसे निद्रावस्था में हाथ-पाँव छटपटाना, मुँह वनाना इत्यादि । यह क्रिया चेतनाशक्ति के स्वयं प्रवाहित होने के कारण होती है । क्योंकि शैशवावस्था में मज्जातन्तु अस्थिर दशा में रहते हैं और चेतनाशक्ति मज्जापेशियों से प्रवाहित होकर नसों में वड़े वेग से वहती है ।

प्रतिक्षेपी या सहज क्रिया—इस क्रिया द्वारा शिशु हिचकियाँ लेता है, चौंक उठता है, रोता है, छींकता है या तरल पदार्थों को निगलता है। माता-पिता, नर्स इत्यादि नवजात शिशु को बड़ी सावधानी से अँगड़ाई लेते देख आश्चर्य करने लगते हैं। इन क्रियाओं का शरीर के विकास से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। परन्तु ये ऐसी क्रियायें हैं जिन्हें शिशु स्वाभाविक रीति से करता है और जिनको करने में उसे कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

प्रेरणात्मक क्रिया—ये क्रियायें सहज क्रियाओं की अपेक्षा अधिक संयुक्त या सम्मिश्रित हैं। इनमें से अनेक क्रियाएं ऐसी हैं जो बाहरी उत्तेजना देने से उत्पन्न होती हैं। ऐसी क्रियाओं का कुछ प्रयोजन या हेतु होता है। इन क्रियाओं को करने में वंशगत संस्कार विशेष महत्त्व रखते हैं।

शिशु कुछ काल के अनंतर उनका प्रयोजन समझता है और स्वयं प्रेरित होकर करता है। ये क्रियायें ऐसी हैं जिन्हें करने के लिये शिशु को बड़ी लालसा होती है और यदि उसकी लालसा को तृप्त करने में कुछ रोक-थाम की जायगी, उसे बड़ा दुःख होता है। जैसे कुछ लालसाएँ नीचे दी जाती हैं—

चीजों का पकड़ना—किसी वस्तु को पकड़ने के लिये ये क्रियाएँ होती हैं—(१) उसको देखना, (२) उसको पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाना और (३) जब हाथ में आ जाय तो मुट्ठी बाँध लेना।

किसी वस्तु का पकड़ना संग्रहण प्रवृत्ति (Grasping Reflex) से भिन्न है। जन्म के समय से ही शिशु उँगली को हथेली में रखने से उसे पकड़ता है और धीरे-धीरे उसे मुँह में डालता है।

दो सप्ताह का शिशु स्थिर चीजों को बड़े प्यार से देखता है। छः और आठ सप्ताह के बीच वह चीजों को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाता है और छः मास में उस चीज तक पहुँचकर उसे पकड़ने लगता है। अब वह दोनों हाथों को आगे बढ़ाता है और हथेलियों के बीच चीजों को पकड़कर मुँह में ठूँसता है। नौ और दस मास का शिशु किसी भी चीज को अच्छी तरह पकड़ सकता है और मुँह में ले जाना छोड़ देता है।

चीजों को पकड़ने में अब वह बड़ा दक्ष हो गया है और उँगलियों से छोटी-

बैठना

[पृ० १०]

आपका शिशु—

घुटने के बल चलना

छोटी चीजें जैसे रोटी के टुकड़े, तागा, पिन इत्यादि भी पकड़ सकता है। पास रक्खी हुई टोकरी को खींचकर उसको टटोलने में भी निपुण हो जाता है।

वैठना-शिशु लेटे-लेटे थक जाता है। छः या सात सप्ताह के उपरान्त ही वार वार गोद में जाने के लिये रोता है। जब उसे घुटने में वैठाया जाता है या कन्धे के वल घुमाया जाता है तब वह वहुत प्रसन्न होता है। तीसरे मास में वह स्वयं बैठने की चेष्टा करता है। वह अपने कन्धे और सिर को उठाने लगता है और वार-वार गिर पड़ता है। माता के घुटने में आसानी से बैठने लगता है। जब वह हाथगाड़ी में घूमने ले जाया जाता है तो वह वैठे हुए जाना चाहता है। जब शिशु पीठ के वल से सोया रहता है तो अपने हाथ देने से उन्हें पकड़ लेता है और वैठने की चेष्टा करता है। सात महिने में वह आसानी से उठ सकता है और एक वर्ष से पूर्व ही वैठना सीख जाता है।

लोटपोट लेना और घुटने के वल चलना—जिस शिशु में क्रियाशक्ति अधिक होती है उसमें तीन प्रकार का संचलन देखा गया है। इनको सञ्चलन-शक्ति की सीढ़ियाँ माना गया है। जैसे लोटपोट लेना, घुटने के वल सरकते हुए चलना आदि।

जब शिशु अपना कन्धा और सिर उठाने की क्रिया में निपुण हो जाता है तो वह पेट के वल आगे वढ़ने का प्रयत्न करता है और लुढ़कने लगता है। वैठना सीखने से पूर्व वह लुढ़कना सीखता है। इसके पश्चात् वैठे-वैठे एक पैर मोड़कर और दूसरे से सरकते खीसकते २ वह सारे कमरे की परिक्रमा करता है। कभी कभी वह अपनी बाँहों और हाथों से भी अपने को आगे वढ़ाता है।

पेट के वल लेटकर शिशु पशुओं की तरह रेंगता हुआ आगे वढ़ता है। धीरे-धीरे देह का सारा वोझ हाथ और घुटनों में चला जाता है। घुटनों के वल चलने में निम्नलिखित वातें देखी गई हैं :—

(अ) शिशु जब पेट के सहारे से उठता है तो अपना सिर और ठुड्डी ऊपर रखता है। (व) फिर छाती उठाता है और (स) घुटने उसको आगे वढ़ाने या ढकेलने में सहायता देते हैं।

खड़ा होना और चलना—जब शिशु चलना आरम्भ करता है तो उसके पाँव ठीक-ठीक नहीं उठते। वह पहले एक पैर आगे बढ़ाता है फिर उस पर सारा बोझ डालकर दूसरा पैर आगे करता है याने पहले पैर तक लाता है। फिर पहले पाँव को आगे बढ़ाता है—दूसरा उसके साथ मिलाता है फिर पहले पैर को आगे चलाता है। इसी प्रकार तालबद्ध क्रिया की तरह हाथ-पाँव उठाता हुआ आगे चलने लगता है। बार-बार उठने-बैठने, चलने, फिरने-गिरने पड़ने से उसके अंग मजबूत बनते रहते हैं और चलने में सहायता देते हैं।

कई शिशु चलना शीघ्र आरम्भ कर देते हैं और कोई देर में। माता-पिता बहुधा अपने बालकों के शीघ्र न चल सकने का कारण उसकी मानसिक तथा बौद्धिक निर्बलता समझकर चिन्तित होते हैं। उनका चिन्तित होना अनुचित है। देर से चलने वाले शिशु भी प्रखर बुद्धि वाले होते हैं। पौष्टिक भोजन के न मिलने से, लम्बी बीमारी से, खेल-कूद करने के लिये पर्याप्त स्थान न मिलने से शिशु देर से चलने लगता है। यदि शिशु का विकास साधारण विकास से तो कम है उसे अवश्य किसी योग्य अनुभवी चिकित्सक को दिखाना चाहिये। चार से छः मास के शिशु की आदर्श तौल और कार्यशक्ति या क्रिया शीलता से अपने शिशु की तौल और कार्यशक्ति की तुलना करने से उसकी निर्बलता का अनुमान लगाया जा सकता है।

ऊपर चढ़ना—शिशु को सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने में आनन्द आता है। नीचे उतरने में बड़ी घबड़ाहट होती है। जिन घरों में प्रवेश करने के लिये सीढ़ियाँ होती हैं वहाँ शिशु एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी में चढ़कर धीरे-धीरे अन्दर चला जाता है। जब उसे चलने का अच्छा अभ्यास हो जाता है तो वह सरलता से किसी डण्डे या छड़ी के सहारे, या किसी प्रौढ़ मनुष्य के हाथ के सहारे बिना बैठे हुए ऊपर चढ़ जाता है। तीन वर्ष का शिशु बड़ी सावधानी से पहले एक पाँव ऊपर रखता है फिर दूसरा पाँव पहले पाँव के समीप लाकर आगे कदम बढ़ाता है। चार वर्ष का शिशु हमारी तरह ऊपर-नीचे आ-जा सकता है। बड़े-बड़े घरों के शिशु छोटे-छोटे स्टूलों को खींचकर कुर्सी के समीप ले जाते हैं। स्टूल से कुर्सी और कुर्सी से मेज के ऊपर जा बैठते हैं। इस तरह ऊपर-नीचे आने-जाने से उनकी

खड़ा होना और चलना

[पृ० १२]

ऊपर चढ़ना

मांसपेशियाँ मजबूत होती जाती हैं और वह ऊपर तथा नीचे उतरने में बड़ा दक्ष हो जाता है।

पाठकों ने देहातों में बहुधा देखा होगा कि आठ-नौ वर्ष का बालक तीस' या चालीस' की ऊँचाई तक बड़ी आसानी से टहनियों को पकड़-पकड़कर चढ़ जाता है। और अपने को बड़ा बहादुर समझता है।

दौड़ना—जैसे ही शिशु चलना सीख जाता है तैसे ही वह हर एक चीज के पास जल्दी-जल्दी जाना चाहता है। जल्दी-जल्दी जाने या दौड़ने में उसके पैर बेतुके बढ़ते हैं और वह कई बार गिर पड़ता है। लेकिन वह हतोत्साह नहीं होता। जैसे-जैसे वह स्वयं चलने में दक्ष होता जाता है वैसे-वैसे वह दौड़ने में भी प्रवीणता प्राप्त करता जाता है।

कूदना—दो वर्ष का शिशु कुछ ऊँचाई से कूदने लगता है। उनका पहला कूदना केवल धीरे-धीरे ऊपर से नीचे उतरना ही होता है। धीरे-धीरे वह कूदते समय अपने शरीर को ऊपर उठाता है और आगे फेंकता है। दो और चार वर्ष के बीच में उसे अच्छी निपुणता प्राप्त हो जाती है और वह रस्सी के बल उछलने-कूदने लगता है।

जब शिशु उछलने, कूदने और ऊपर चढ़ने लगता है उस समय किसी प्रकार उसकी रोक-थाम नहीं करनी चाहिये। माता-पिता तथा पालक या शिक्षकों को उन्हें पूर्ण रूप से स्वतंत्रता देनी चाहिये। दुर्घटना से सावधान मात्र करते रहना चाहिये। इस प्रकार के उछल कूद से उसकी मांस-पेशियाँ मजबूत बन जाती हैं और उसमें अधिक काम करने की शक्ति आती है। और चेतना शक्ति भी बढ़ती है।

जब तक बालक को चलना न आता हो या उसे किसी काम करने की इच्छा न उत्पन्न हो तब तक उस पर दबाव नहीं डालना चाहिये।

यदि शिशु चलना चाहता है लेकिन चल नहीं सकता तो चिकित्सक के परामर्श से उसे ऐसे साधन देने चाहिये जिससे वह चल सके।

यदि आप अपनी इच्छा से समय से पूर्व ही बालक को खड़ा करने या चलाने का अभ्यास करा रहें हों तो आप उसके स्वास्थ्य के लिये हानिकर सिद्ध

होंगे। ऐसा करने से उसकी हड्डियाँ मुड़ने का भय है। यह आपको भलीभाँति समझना चाहिये कि शिशु पीठ के बल सोने, करवट पलटने, छाती के बल आगे बढ़ने, घुटने के बल चलने इत्यादि से धीरे-धीरे क्रम-क्रम से अपने शरीर की मांसपेशियाँ और हड्डियों को ऐसी मजबूत बना लेता है कि समय आते ही वह बैठता है, खड़ा होता है, चलने और दौड़ने लगता है और ऊपर-नीचे कूदता है।

[४]

अविभावक क्रियायें

शिशु यदि सन्तुष्ट है, उसकी आवश्यकता पूरी हो गई है तो वह अपनी संतुष्टि मुसकुराकर प्रकट करता है। यदि उसे कुछ वेदना है या उसकी आवश्यकता पूरी नहीं हुई तो वह अपनी वेदना या अपना असन्तोष रोकर प्रकट करता है।

जैसे ही शिशु संसार में प्रवेश करता है—प्रथम साँस लेते ही रोना आरम्भ करता है।

जब दो मास का होता है तब मधुर-मधुर मुसकान से सबका चित्त प्रसन्न करने लगता है।

तीसरे मास में अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिये हँसता है। बहुत प्रसन्न होने पर उछलता-कूदता और ताली बजाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों की संख्या चौदह बतलाई है इनमें से छः को उन्होंने प्रवृत्यात्मक क्रिया माना है। जैसे भय, क्रोध, घृणा, आश्चर्य, संवेग इत्यादि।

भय—प्रायः देखा गया है कि शिशु जब एक वर्ष का होता है तभी से उसे भय होने लगता है। वह किसी अपरिचित शब्द को सुनकर या अपरि-
व्यक्ति को देखकर रोता है और माता की गोद में मुँह छिपा लेता है।
: जल, तेज आँधी, बादलों के गर्जन और बिजली की चमक या हानि-
पशु, बड़ी-बड़ी आँख, दाँत या भूत-पिशाच की कहानियों से लोगों को भय, होता है। किसी बच्चे की ओर मुँह फाड़कर देखने, बड़ी-बड़ी आँखें बनाने से

अभिभावक क्रियायें

[पृ० १४]

क्रोध

[पृ० १५]

उसे भय लगता है। बिजली की चमक से उतना भय नहीं होता जितना बादलों के गर्जन से। किसी नवीन घटना के घटित होने से जिसके लिये शिशु पहले से तैयार नहीं रहता, वह भयभीत होता है। शिशु खिलौने से प्रसन्न होता है। यदि उसे ऐसे खिलौने दिये जायँ जिन्हें पकड़ते ही वे अनोखी आवाज करने लगते हैं या उछलने-कूदने लगते हैं तो वह भयभीत हो जाता है। यदि शिशु ने वही खिलौना पहले देखा हो या उसे स्पर्श किया हो तो उसे भय नहीं लगेगा।

इसलिये भयभीत न होने के लिये पूर्व ज्ञान होना जरूरी है। अन्धकार से भी अनेक शिशु डरते हैं। बहुधा माता-पिता उन्हें ऐसी कथा—कहानियाँ सुनाते हैं जिनमें भूत-पिशाच या भयानक पशु-पक्षियों के अन्धकार में रहने की बात रहती है। इससे अँधेरा होते ही शिशु के चित्त में घबराहट उत्पन्न होने लगती है। ऐसी कहानियाँ सुनाना वर्जित है।

अनेक शिशु डाक्टर का नाम सुनते ही रोने लगते हैं। ऐसे कितने ही उदाहरण पाठकों को मिलते होंगे कि उन्होंने साधारण सी बात पर शिशु को भयभीत होते देखा होगा।

हमारे सामने शिशु के भयभीत होने का कारण कितना ही तुच्छ क्यों न हो, हमें उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिये और भय उत्पन्न होनेवाली परिस्थिति आने ही नहीं देनी चाहिये। मनोवैज्ञानिकों ने लिखा है कि भय से भय उत्पन्न होता है और भय अनुभव करने की आदत अच्छी नहीं होती।

शिशु के माता-पिता या पालक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जिससे बालक भयभीत न हों। जिन वस्तुओं के छूने या देखने से भय लगता है उन वस्तुओं को स्वयं छूकर सावधानी से शिशु को स्पर्श करवाना चाहिये। जब उसे भय लगने लगे तो उसके समीप जाकर उसे समझाना चाहिये या उसे किसी दूसरे खेल में लगाकर उनका मन बहलाना चाहिये।

क्रोध—शिशु को भय तो लगता ही है पर उसमें दाह या द्वेष की भावना भी बहुत होती है। क्रोध उसे बहुत जल्दी आता है। यदि उसके खेल-कूद में रुकावट डाली जाय तो उसे बड़ा क्रोध आता है। शिशु क्रियाशील है। जाग्रतावस्था में वह कुछ न कुछ करता रहता है। यदि आप उसके काम में रुकावट डालेंगे तो वह

वड़ा क्रुद्ध होगा। क्रुद्ध होने पर उसका मुँह लाल हो जाता है, वह लात मारता है, रोता है, अपने शरीर को कड़ा वना लेता है, साँस रोकता है, भूमि में गिरकर छाती और पीठ के वल लोटने लगता है। जो भी वस्तु हाथ लगती है उसे इधर उधर फेंकता है, उधेड़ता है। फिर अपशब्दों का प्रयोग करने लगता है, धमकी देता है और अपनी वात को ठीक वनाने के लिये तर्क करने लगता है। शिशु जव चार मास का होता है तभी से उसमें क्रोध आने लगता है। जैसे-जैसे शिशु वड़ा होता जाता है, उसकी समझने की शक्ति वढ़ती जाती है और क्रोध करना कम होता जाता है। क्रोध शिशु के हर्ष में वाधा डालता है, उसके व्यक्तित्व के विकास में रुकावट करता है और उसके सामाजिक समायोजन में वाँधा डालता है।

घृणाभाव—घृणाभाव चार या पाँच मास में ही उत्पन्न हो जाता है। उसकी मुखाकृति से ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि अमुक पदार्थ उसे पसन्द नहीं है। वड़े वालकों में किसी घृणित वस्तु के विषय में सोचने से भी घृणा उत्पन्न हो जाती है।

संवेगात्मक मानसिक क्रियायें—हर्ष, सुख, आनन्द, गर्व, सन्तोप, आह्लाद इत्यादि संवेगात्मक मानसिक क्रियायें स्वाभाविक रूप से होती हैं क्योंकि जिन कारणों से ये क्रियायें उत्पन्न होती हैं उनसे शिशु वचने या उन्हें दूर करने का यत्न नहीं करता। जहाँ तक हो सके वह ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिससे उसे हर्ष सुख और आनन्द मिले और क्रोध, भय या दुःख के कारणों से वचने का उपाय ढूँढ़ता है। इन सव प्रतिक्रियाओं को अभाववादी क्रियायें कहते हैं।

जव शिशु एक मास का होता है तव उसमें दुःख का कुछ आभास या लक्षण दिखाई देने लगते हैं। मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार भय, क्रोध, घृणा और ये द्वेष शोक भाव जनित क्रियाएँ हैं। इनको भावहीन प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। दुख के साथ-साथ स्नेह भावनायें भी साथ-साथ उत्पन्न होती हैं। पर तीसरे मास में ये क्रियायें स्पष्ट होने लगती हैं।

निर्वल, भूखे और कम सोनेवाले शिशु को हँसी कम आती है। उसमें हर्ष की अपेक्षा क्रोध की मात्रा अधिक होती है। हर्ष अथवा आह्लाद शिशु की

आपका शिशु—

स्नेह

[पृ० १७]

ज्ञानवृद्धि की परिचायक है। इसके द्वारा शिशु स्वास्थ्य-लाभ भी करता है और दुःख, भय तथा क्रोध जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं उनसे बचता है।

स्नेह—शिशु अपने माता-पिता पालक दाई या जो उसकी अच्छी तरह देख-रेख करता है उससे बड़ा स्नेह करता है। स्नेहभाव का उदय शिशु में आठ मास में होता है। एक वर्ष की अवस्था में वह अपने साथी अन्य बालकों को भी प्यार करता है। शिशु की प्रारम्भिक मित्रता क्षणिक होती है। दो वर्ष के उपरान्त स्नेहभाव बढ़ने लगता है और शिशु ऐसे लोगों या चीजों से अधिक स्नेह करने लगता है जिनसे उसे सुख मिलता है। शिशु अपना स्नेह हँसकर-मुसकुराकर, चुम्बन करके और प्रेम भरी दृष्टि से देखकर प्रदर्शित करता है।

शिशु में स्नेहभाव के विकास से कुछ हानियाँ भी होती हैं। माता-पिता तथा पालकों को उनसे बचाने के उपाय ढूँढने चाहियें।

शिशु को अपने साथियों को भी प्यार करना चाहिये।

स्नेह एक ही बालक या साथी तक परिमित न रहे। अन्य बालकों से भी स्नेह करना चाहिये। 'विश्वप्रेम' की बुनियाद या नींव इसी अवस्था में पड़नी चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शिशु को अच्छे मित्र मिलें। यदि शैशवावस्था ही से उसका पाला बुरे बालकों और साथियों से पड़ेगा तो वह प्रौढ़ होने पर पाप की ओर अग्रसर होगा और पापी या अपराधी बनेगा। डा० बुक्स का कहना है कि हमें बुरे साथियों से बचना भी है और साथ ही अच्छे साथियों को ढूँढना भी है।

अन्य प्रवृत्तियाँ—दुःख कई प्रकार के होते हैं। जैसे, Grief (शोक) Sorrow (दुःख), regret (खेद), worry (चिन्ता) और embarrassment (संभ्रमण)।

जैसे-जैसे शिशु बड़ा होता जाता वैसे-वैसे ये प्रवृत्तियाँ उसमें प्रत्यक्ष रूप से देखने में आती जाती हैं और यही प्रतिक्रियाएँ धीरे-धीरे अन्य प्रवृत्तियों के साथ संघटित रूप धारण कर मिश्रित भावनायें जैसे सहानुभूति, दया, कृतज्ञता इत्यादि उत्पन्न करती हैं।

विषयात्मक प्रवृत्तियों के नियंत्रण के लिये निम्नलिखित उपाय बताये गये हैं—

(१) अच्छा स्वास्थ्यः जो शिशु स्वस्थ है, जिसे अच्छी नींद आती है, जिसे पौष्टिक भोजन मिलता है वह अपनी भावात्मक प्रवृत्तियों पर अधिक नियंत्रण रख सकता है। अस्वस्थ, भूखे और न सोने वाले शिशु भावात्मक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण नहीं रख सकते हैं।

अस्वस्थ बालक ही बहुधा क्रोधी और निर्बल होता है।

(२) माता-पिता की प्रवृत्तियाँ—माता-पिता की प्रवृत्तियाँ भी शिशु की भावात्मक प्रवृतियों के विकास में सहायता देती हैं।

(३) उत्तेजना देने वाले खेल-कूद—ऐसे खेल-कूद जिनसे बालक उत्तेजित हो, हानिकारक होते हैं। हमारा सारा वातावरण ही ऐसा होता है जिसमें ऐसी घटना घटित होती हैं जिनसे हम उत्तेजित होते हैं। बालक को धीरे-धीरे सब परिस्थितियों में रहने का अभ्यास करा देना चाहिये जिससे वह निरर्थक उत्तेजित न हो।

(४) व्यर्थ हँसना उत्तेजित होने पर बहुधा शिशु अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को इस प्रकार प्रकट करता है जिसे समाज अच्छा नहीं समझता है। माता-पिता को शिशु को इस सम्बन्ध में शिक्षित करना चाहिये कि कब और किस दशा में उसके लिये खिलखिलाकर हँसना अच्छा समझा जाता है। वातावरण को देखते हुए ही अपनी प्रवृत्तियों को प्रकट करना चाहिये क्योंकि यही बात महत्त्वपूर्ण समझी जाती है।

आत्मप्रकाशन—शिशु के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब वह अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करना चाहता है और दूसरे लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। अब वह शिशु न रहकर मानव बनने लगा है। यह आत्म-प्रकाशन-काल शिशु के जीवन में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आत्म प्रकाशन से आत्मभाव प्रकट होता है और आत्मभाव पर ही उसका व्यक्तित्व निर्भर रहता है। बोलने में प्रारम्भ में शिशु 'वह' 'उसका' इत्यादि सर्वनाम अधिक काम में लाता है। तीसरे वर्ष में ही वह 'मैं' या 'मेरे' शब्दों का उपयोग करने

आश्चर्य और उत्सुकता

लगता है। इससे प्रकट होता है कि उसे अब अपने व्यक्तित्व का बोध होने लगा है।

आश्चर्य और उत्सुकता—जैसे-जैसे शिशु बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे उसे नयी-नयी चीजों को देखकर आश्चर्य होता है और वह उनके विषय में अधिक जानने के लिये उत्सुक रहता है। दृष्टि और स्पर्श द्वारा नहीं, अब वह प्रश्नों की झड़ी लगाकर विश्व की खोज करता है। ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्नों के उत्तर सरल हो, सत्य हों और अल्प हों।

[५]

मूल कल्पना

शिशु को रंगबोध आकृति-बोध से पीछे होता है। किसी पदार्थ या चित्र का ज्ञान वह उसके आकार को देखकर ही करता है।

तीसरे या चौथे ही मास से शिशु को चित्र देखने में बड़ा आनन्द होने लगता है। दीवार में लगे हुए चित्रों को देखने के लिये वह बड़ा उत्सुक रहता है और बार-बार उन तक पहुँचने के लिये रोता है। ११वें महीने से शिशु चित्रों को कुछ-कुछ समझने भी लगता है और १५ वें मास में उसकी पहचान करने की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि वह एक सामूहिक चित्र में अपने माता-पिता को पहचान लेता है। चित्रों द्वारा अनेक पदार्थों के नाम भी शिशु सीख जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने शिशु के १६ वें और २० वें महीने को चित्रकाल कहा है। अर्थात् इस काल में शिशु को चित्र देखने का बड़ा शौक रहता है। पशु-पक्षी के चित्रों को देखने में उसे विशेष अभिरुचि रहती है। चित्र उसके लिये केवल चित्र ही नहीं, एक वास्तविक चीज हैं। अनेक शिशु जिनमें बौद्धिक विकास अधिक होता है वे पशु-पक्षियों के चित्रों को इस प्रकार थपथपाते हैं, प्यार करते हैं मानो वे वास्तविक पशु-पक्षी हों। पुष्प के चित्र को उठाकर सूँघने लगते हैं।

चित्र-शिक्षा के महत्त्वपूर्ण साधन—चित्र-शिक्षण के विशेष और महत्त्वपूर्ण साधन हैं। चित्रों के द्वारा शिशु भिन्न-भिन्न पशु-पक्षी एवं पदार्थों के नाम और

काम सरलता से सीखता है । अनेक शिक्षा-विशेपज्ञों का कहना है कि इस अवस्था में चित्रों द्वारा अक्षर-बोध तथा रेखागणित का आकार-बोध भी शिशु सरलता से कर सकता है ।

चित्रों के द्वारा वस्तु-ज्ञान भी अच्छा होता है क्योंकि अनेक पदार्थ और पशु-पक्षी ऐसे हैं जिन्हें शिशु वास्तविक रूप में नहीं देख पाता है । यदि देखता भी है तो हाथ लगाकर स्पर्श नहीं कर पाता है ।

भिन्न-भिन्न पुष्प, वृक्ष तथा पशु-पक्षियों के चित्र एक ही पुस्तक में होने से शिशु को उनका ज्ञान सरलता से करवाया जा सकता है । प्रत्यक्ष रूप से वस्तुज्ञान कराने के लिये अनेक पशु-पक्षी उपलब्ध नहीं होते हैं । चित्रावली समीप रहने से शिशु का जब जी चाहता है उसे खोलकर देख सकता है ।

सर्वप्रथम ऐसे चित्र नहीं दिखाने चाहिये जिनमें विस्तार पूर्वक चीजें दिखाई गई हों । काले और सफेद रङ्गों के बने बड़े-बड़े चित्र इस अवस्था के लिये ठीक माने गये हैं । रङ्गीन चित्र उस अवस्था में देना चाहिये जब शिशु को कुछ-कुछ रङ्गबोध और आकारबोध हो गया हो ।

रङ्गबोध—यह कहना बड़ा कठिन है कि शिशु को कब रङ्गबोध होता है । बहुधा यह देखा गया है कि पाँच मास की अवस्था में शिशु को उज्ज्वल रङ्ग की वस्तुओं को देखकर प्रसन्नता होती है ।

साधारणतः यह भी देखा गया है कि जब शिशु बोलना सीखता है तो वह हर एक चीज के नाम बड़ी सरलता से लेता है और याद करता है, लेकिन रङ्गों के नाम लेने और याद करने में उसे कठिनाई होती है । शिशु लाल और पीला रङ्ग पहले पहचानता है और हरा और नीला रङ्ग पीछे ।

रङ्ग-बिरंगे चित्रों द्वारा और बार-बार वृक्ष, फूल-पत्ते इत्यादि देखने से शिशु में शीघ्र ही रङ्गों का बोध होता है ।

संख्या—शिशु जब किसी पदार्थ का अवलोकन करता है तो उसका ध्यान सबसे पूर्व उसकी आकृति की ओर जाता है । उसको पकड़कर उसके भारी और हल्के होने का बोध होता है । लेकिन रङ्गबोध की तरह उसे संख्या-बोध भी ठीक नहीं हो पाता । वह संख्या ठीक क्रम से नहीं बोल सकता । बोलने में बीच की

मूल कल्पना (चित्रशिक्षा)

[पृ० २०]
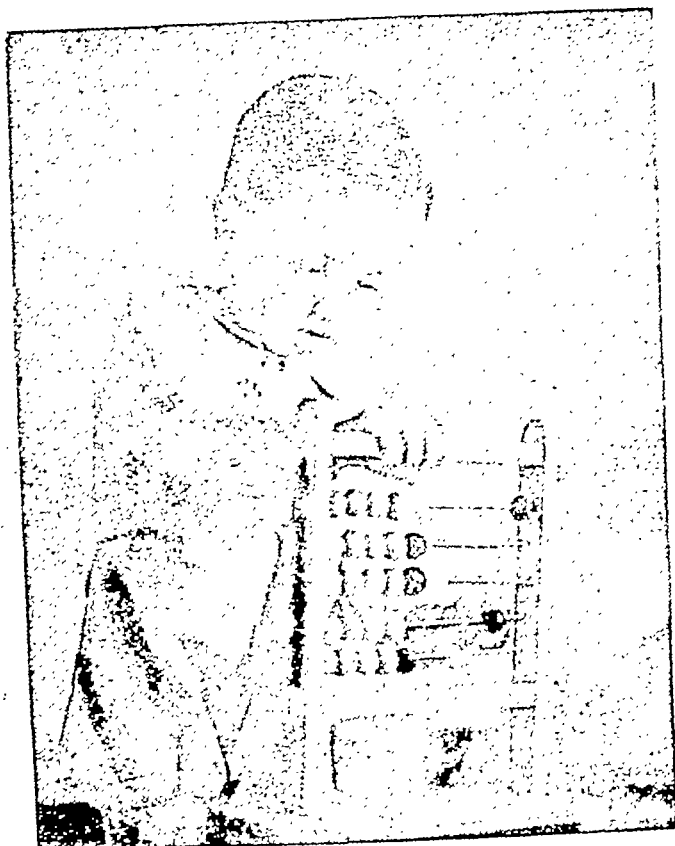
संख्या-बोध

गिनती छोड़ देता है। उसके लिये क्रम कुछ महत्त्व नहीं रखता। मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार पाँच वर्ष की आयु का बालक चार या पाँच तक शुद्ध गिनती बोल सकता है लेकिन १३ तक गिनती बोलने में क्रम ठीक नहीं रखता।

माता-पिता शिशु को गिनती सीखने में सहायता दे सकते हैं। उसकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों को एक-एक करके छूने से, कहानी के रूप में कहने से गिनती सरलता से सिखाई जा सकती है।

गणित में विद्यार्थी निर्बल पाये जाते हैं। साधारण-सा प्रश्न पूछने पर उँगलियाँ गिनने लगते हैं। बाल-मन्दिर में और प्रारम्भिक विद्यालयों में निरंतर गिनती गिनवाने का अभ्यास कराना चाहिये।

समय—शिशु भूत, भविष्य और वर्तमान कुछ नहीं समझता। शिशु का संसार वर्तमान ही है। एक वर्ष की अवस्था में समय का कुछ बोध होता है। आने वाले 'कल' का बोध उसे खेलते-खेलते होता है, जब वह अपने साथियों से कहता है अच्छा कल खेलेंगे। या जब उसके माता-पिता उसे आश्वासन देते हैं कि कल तुम्हें बाजार ले जावेंगे। आने वाले 'कल' की उसे बड़ी प्रतीक्षा रहती है और अनुभव होने लगता है कि दिन बीत रहा है, शाम होगी और रात के बीतने पर 'कल' आवेगा।

निकट और दूर का बोध—जब शिशु ध्यानपूर्वक किसी वस्तु को देखता है तो उसे उसकी दूरी का कुछ-कुछ बोध होने लगता है। यह बोध उसकी अवस्था-वृद्धि के अनुसार बढ़ता रहता है। छोटा शिशु गोद में बैठे-बैठे चाँद को देखते ही उसे पकड़ना चाहता है। उसे दूरी का कुछ ज्ञान नहीं रहता। खटिया में सोये-सोये जब वह अपनी छोटी उँगलियों से अपने बदन को छूता है तो उसे समीपता और दूरी का अनुभव होता है। गोद में लेकर कमरे में घुमाने से भी वह निकट और दूर की वस्तुओं का बोध करता है। बड़ा होने पर जब वह चलने लगता है तो स्वयं ही इस बात में दक्ष हो जाता है और ऊँची टँगी हुई चीजों तक पहुँचने के लिये स्टूल, कुर्सी, मेज इत्यादि की सहायता लेता है। इस प्रकार उसे आगे-पीछे, दाहिने-बायें का भी ज्ञान होने लगता है।

[६]

अभागा शिशु

अभी तक हमने स्वस्थ शिशु के विषय में ही लिखा है। संसार में ऐसे भी शिशु हैं जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता और जो वंशगत दोष आ जाने से अधिक उन्नति नहीं कर सकते। कितने ही ऐसे हैं जिन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिलता और उनका स्वास्थ्य गिरता ही जाता है। स्वास्थ्य के गिरने से मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का विकास पूर्ण रूप से नहीं होता।

स्वास्थ्य की देख-रेख—यदि शिशु के स्वास्थ्य पर अच्छी तरह ध्यान दिया जाय तो वह अपनी मानसिक उन्नति कुछ अंश तक अपने आप कर लेता है। उचित खेल-कूद की सामग्री के न प्राप्त होने पर भी वह स्वयं देखता है, चलता है इधर-उधर घूमता है और अपनी आवश्यकतानुसार बोल भी लेता है।

भली-भाँति देख-भाल न होने से उसमें अनेक ऐसे दोष आ जाते हैं जो प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं किये जा सकते। विद्यालयों में अधिक समय उनके इन दोषों को दूर करने में ही बीत जाता है जो किसी और अच्छे काम में लगाया जा सकता। मनोवैज्ञानिकों का यह भी मत है कि ऐसे शिशु जिनकी बाल्यावस्था में उचित देख रेख नहीं होती, बड़े होने पर कभी अपनी कमी पूरी नहीं कर सकते।

लाड़ प्यार—अनेक माता-पिता शैशवावस्था में अपने बालकों की आदतें अधिक लाड़-प्यार से बिगाड़ देते हैं। यदि किसी बालक को चोरी करने की आदत पड़ जाती है और उसे ठीक नहीं किया जाता तो वह बालक बड़ा होने पर एक भयङ्कर डाकू बन जाता है।

बड़े होने पर हममें जो दुर्गुण आ जाते हैं उनका मूलाधार हमारी शैशवावस्था ही है। बुरी आदतें मानसिक विकास के लिये उतनी ही हानिकारक हैं जितनी शरीर के लिये।

पिता के याद दिलाने से उसे पूर्व घटनायें याद रहती हैं। हमारे जीवन में कुछ ऐसी घट-नायें घटित होती हैं जिन्हें हम भूल नहीं सकते। जैसे कार के टकराने से बाल-बाल बचना, दूर देश की यात्रा, तथा रेल, मोटर, जहाज का देखना और उनमें चढ़ना सर्वदा के लिये बालक को याद रहती हैं।

शिशु की शैशवावस्था की घटनाओं को ध्यानपूर्वक देखने से पता लगता है कि ग्यारहवें या बारहवें सप्ताह में वह अपनी दूध की बोतल पहचानने लगता है और उसे उसकी याद रहती है। आठ से दस सप्ताह के बीच शिशु अपने माता-पिता को पहचानने लगता है। छः मास का शिशु घर और बाहर के लोगों में भेद जानने लगता है। नौ और दस मास में शिशु अनेक पदार्थों को पहचानने लगता है। उन चीजों के नाम लेने पर वह इधर-उधर देखने लगता है।

दो वर्ष के बालक चित्र की सहायता से अनेक पदार्थों के नाम लेने लगते हैं। यदि हम किसी पहचाने हुए चित्र को ऐसे गत्ते में और चित्रों के बीच चिपका दें तो शिशु बड़े ध्यान से सब चित्रों को देखकर अपने पूर्वपरिचित चित्र को पहचान जाता है।

ध्वनि-प्रतिभा—ध्वनि सुनकर शिशु को ध्वनि करनेवाले का बोध होता है। माता का बोलना सुनकर वह उसे पहचान लेता है। दो वर्ष की अवस्था में शिशु स्वयं भी शब्द निकालने लगता है और गाने का प्रयत्न करता है।

निर्वाहक प्रतिभा—निर्वाहक प्रतिभा बहुत पहले से शिशु में दिखाई देती है। निर्वाहक प्रतिभा आदत का आधार है। किसी क्रिया-वेदन के साथ इसका बहुत बड़ा सम्बन्ध है। दूध की बोतल को देखते ही शिशु दोनों हाथों को आगे बढ़ाकर बोतल पकड़ता है और कपड़े पहिनाने के लिये अपने हाथ-पाँव देता है।

अनुकरण—इसके बाद ही शिशु किसी चीज या दृश्य को देखकर इसका मानसिक चित्र बना लेते हैं और उसकी नकल उतार लेते हैं जैसे अपने को इंजिन बनाकर सारे कमरे में घूमना, छड़ी का घोड़ा बनाना इत्यादि।

मानसिक चित्रों द्वारा जो भाव प्रदर्शित करते हैं वे अपने हस्तकौशल द्वारा नहीं कर सकते। शिशु खड़िया द्वारा भौंकता हुआ कुत्ता नहीं खींच सकता लेकिन स्वयं बैठकर भों-भों करता है और पूरी नकल करता है।

शब्द याद करना—साधारणतः प्रत्येक स्वस्थ शिशु चार वर्ष की अवस्था तक इतने शब्द याद कर लेता है जिनके द्वारा वह अपने भाव व्यक्त कर सकता है। शब्दों का याद करना उनके सुनने पर निर्भर है। अर्थात् जो शिशु जितने अधिक शब्द सुनेगा उतने ही अधिक याद करेगा। चार वर्ष का शिशु चार शब्दों के वाक्यों को अच्छी तरह दुहरा सकता है।

कल्पना और खेल—अनेक लोग कल्पना को ही स्मृति का एक अङ्ग समझते हैं। कल्पना झूठी हो सकती है लेकिन देखी हुई चीजों को ही फिर से देखना या याद करना स्मृति है।

कल्पना करते समय सत्य को दूर छोड़ देते हैं। या कल्पना करने में सत्य की सहायता से एक दूसरी ही वस्तु का निर्माण करते हैं। शिशु पुष्प के चित्र को पुष्प ही समझकर सूँघने लगता है। चित्र में बनी हुई मिठाई स्वयं खाता है और दूसरों को खिलाता है इसी प्रकार के अनेक काल्पनिक खेल करते हुए शिशु का जीवन व्यतीत होता है।

खेल के साधन खिलौने—शैशवकाल का सारा जीवन गुड़ियों से खेलने में बीतता है। गुड़िया ही उसका सर्वस्व है। वह कठिया कपड़े की बनी नहीं है पर उसके लिये जीती जागती गुड़िया है। मनोवैज्ञानिकों ने भी गुड़िया को प्रवृति विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना है। वह उसे खिलाता, पिलाता नहलाता और सुलाता है। उसके साथ खेलता' कूदता, गाता है। गुड़िया के द्वारा वह बहुत कुछ सीखता है।

नाटक—नाटकों के द्वारा शिशु केवल भाव-प्रदर्शन करना ही नहीं सीखता, वह अपना बौद्धिक विकास भी करता है। बालक खेल में इतना मस्त रहता है कि उसे उस समय कुछ छेड़खानी अच्छी नहीं लगती। तीन या चार वर्ष तक उसका सारा समय इस प्रकार के खेल-कूद में बीतता है। ऐसे नाटकीय खेलों द्वारा शिशु में भाव-प्रदर्शन की अद्भुत शक्ति आती है। कभी-कभी उसके मुँह से धारा प्रवाह शब्दों को सुनकर बड़े सयाने भी दङ्ग रह जाते हैं।

कहानी सुनना—शिशु जो सुनता है उसी को नाटक का रूप देता है। उसे रात दिन कहानी सुनने का बड़ा शौक होता है। कहानी पुरानी नहीं होनी

चाहिये। रोज नई कहानी चाहिये। कहानी झूठी भी न हो। दैनिक घटना, ऐतिहासिक और धार्मिक कहानियों से उसे विशेष प्रेम होता है। किसी के माता-पिता को अपने बालकों को अच्छी कहानी सुनने से वञ्चित नहीं रखना चाहिये। भय दिलानेवाली या अनहोनी बातोंवाली कहानी कभी नहीं सुनानी चाहिये।

अच्छी कहानियों के सुनने से बालक आज्ञाकारी, नम्र और आदर्श शिशु बन सकते हैं।

आनन्द-वेदन—शिशु के जीवन के प्रथम चार-पाँच मास, जीवन किस तरह व्यतीत करना चाहिये, सीखने में लगता है। पाँचवें मास में आनन्द-वेदन का आभास देखा गया है। यदि कोई जोर से छींके तोवह मुसकुराने लगता है। वह अपनी माता को ठगने के लिये नींद का बहाना करता है और फिर थोड़ी देर बाद आँख खोलकर मुसकुराने लगता है। ऐसे कितने ही उदाहरण पाठकों की दृष्टि में आते होंगे जिनसे यह प्रत्यक्ष होता है कि शिशु केवल गम्भीर ही नहीं मजाकिया जीव भी है।

[८]

सहानुभूति, प्रवणता या सूच्यता और आत्मनियंत्रण

शिशु-चिकित्सालय में यह बात देखी गई है कि यदि एक शिशु रोता है तो अन्य शिशु भी रोने लगते हैं। उसी प्रकार एक शिशु के हँसने पर सब शिशु हँसने लगते हैं। भय-वेदन का भी यही हाल है। एक शिशु के भयभीत होने से अन्य शिशु भी भयभीत होते हैं।

एक शिशु दूसरे शिशु के व्यवहार से बड़ा प्रभावित होता है। एक शिशु के दुखी होने पर सब दुखित होते हैं और एक के सुखी होने पर सब सुखी। यदि शिशु सबको क्रोध करते देखता है तो वह भी क्रोधी बन जाता है।

यदि परिवार सुखी होगा और प्रसन्न होगा तो उसमें रहने वाले शिशु भी सुखी और प्रसन्न-चित्त होंगे। यदि दुखी और असन्तुष्ट होगा तो उसके शिशु भी दुखी और असन्तुष्ट होंगे।

अपने जीवन के प्रथम छः मास में शिशु में सहानुभूति के ये प्रमाण मिलते हैं। एक के रोने से सब रोवेंगे और एक के हँसने पर सब हँसेंगे।

प्रौढ़ होने पर भी अनेक नवयुवकों को तबतक चैन नहीं आता जब तक वे अपने सुख-दुख को दूसरे से प्रकट कर उनको अपना सुख और दुःख का साथी न बना लेते हों।

शिशु जब पहले-पहल खड़ा होता है या चलने लगता है तो अपने को बड़ा बहादुर समझता है और बड़े घमण्ड से हम लोगों को देखता है। यदि शिशु गिर पड़ता है तो रोने लगता है, वह चाहता है कि हम उसके पास जावें और उसे प्यार करें। यदि वह कोई खेल करता है तो आपका हाथ पकड़कर दिखाने ले चलता है।

मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि हमें शिशु के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिये और उसकी सहानुभूति भी लेनी चाहिये।

सूच्यता—सूच्यता से हमारा तात्पर्य उस सूचना से है जो हम शिशु को देते हैं और उसका पालन करवाते हैं। शिशु हमारी बातों पर विश्वास करता है और हमारा कहना मानकर अपना मत स्थिर करता है। उसका यह विश्वास-भाव हम पर ही निर्धारित रहता है। इसलिये हमें चाहिये कि हम जो बातें कहें वे गलत या असम्भव न हों। यदि वे किसी बात पर अपना मत पक्का कर लेते हैं तो उसका बदलना कठिन हो जाता है।

उल्टा उत्तर देना—बहुधा आपने ऐसे भी शिशु देखे होंगे जो आपकी आज्ञा न मानकर उल्टा जवाब देते हों। या जो बात उनसे करने को कही जाय तो उसका उल्टा-पुल्टा कर देते हों। यह प्रवृत्ति बहुधा उन शिशुओं में पाई जाती है जिनमें आत्मविधान-वेदन अधिक होता है।

नियंत्रण—अपनी मनोवृत्तियों को प्रकट करते-करते शिशु अपने शरीर के अंगों पर नियंत्रण करना सीखता है। अनेक बातें ऐसी हैं जो हम स्वयं करते हैं और वह उसकी नकल करता है। जैसे किसी आत्मीय को विदा देते समय रूमाल हिलाना। शिशु भी ऐसा ही करता है।

अनेक शिशु अपना चातुर्य लोगों को न दिखाकर अपने माता-पिता को, निराश करते हैं। कभी बार-बार अनुरोध करने पर अचानक कोई कविता सुनाने लगता है या नाच दिखाता है। यह सब इसलिये होता है कि प्रारम्भ में शिशु का सारा ध्यान आगन्तुक को देखने तथा उसका निरीक्षण करने में लगता है फिर बार-बार के अनुरोध से उसके मज्ञातन्तुओं से ऐसा बल आता है जो उसको अपने भाव प्रकट करने के लिये उत्तेजित करता है।

अनेक बालक इच्छा रहने पर भी अपने भाव प्रदर्शित नहीं करते। इसे हम हठ या जिद कहते हैं।

स्वतःप्रवृत्तिवाद—किसी कविता को बार-बार दुहराने या किसी खेल को बार-बार खेलने की प्रवृत्ति शिशु में बहुत पाई जाती है। कभी-कभी एक काम को, जिसे करने में विचारशक्ति की आवश्यकता है, छोड़कर वह ऐसा काम करने लगता है जिसको करने की आदत पड़ गई है। किसी शिशु से यदि उल्टी गिनती गिनने को कहा जाय तो वह गड़बड़ा जाता है इसे हम स्वतःप्रवृत्तिवाद automatism कहते हैं। ऐसी प्रवृत्ति छोटे शिशु में, अधिकतः उन बालकों में पाईजाती है। जिनमें मानसिक विकास कम हुआ हो।

स्वतःप्रवृत्तिवादिता से ही बालक हठी बनता है। यदि उसकी गलती ठीक भी की जाती है तो वह हमारी बात सच नहीं मानता। 'यह नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा' उसको ऐसा कहने की ऐसी आदत पड़ जाती है कि जब भी उसे कुछ करने को कहा जाय तो वह शीघ्र कहता है—'मैं नहीं करूँगा'। बालकों को ऐसे बालकों से सचेत होकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये।

नियम प्रतिबँध—शिशु में नियम भंग करने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही नहीं होती है, जिस शिशु को अधिक लाड़-प्यार से बिगाड़ा नहीं गया है वह अच्छा बनना चाहता है। अच्छा बनने की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही उसमें रहती है। लेकिन बनाये जाने से कोई बालक अच्छा नहीं बनता। घर का रहन-सहन, बाह्य वातावरण तथा साथियों का संग सब अच्छे या बुरे बनने में सहायता देते हैं। अच्छे बालकों के साथ अच्छा बनने और बुरे के साथ बुरा बनने की सम्भावना अधिक रहती है।

आत्मभावगण्ड—जब शिशु के मन की अभिलाषा पूरी हो जाती है तो वह हर्ष से फूला नहीं समाता और सिखाने वाले के प्रति अपनी कृतज्ञता के भाव प्रकट करता है। ऐसा हर्ष और आनन्द उसे जबरदस्ती करवाने से नहीं होता।

[६]

तर्क शक्ति

मनोवैज्ञानिक अभी तक निर्णय नहीं कर सके कि शिशु में कब निर्णय और तर्कशक्ति का प्रादुर्भाव होता है। बहुत लोगों का अनुमान है कि तर्कशक्ति प्रौढ़ावस्था में आती है। अनेक विद्वानों का मत है कि शैशवावस्था में इसकी छाया मात्र शिशु में पाई जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने अनेक शिशुओं का परीक्षण किया और उसके आधार पर वे यह सिद्ध करते हैं कि शिशु में तर्कशक्ति होती है और वे अपने पूर्व अनुभव से अनुमान भी लगा सकते हैं। इनमें अनुभव करने की भी शक्ति होती है। पाँच या छः वर्ष के बालक मक्खी और तितली, पत्थर और अण्डे, लकड़ी और शीशे में भेद बता सकते हैं।

शारीरिक और बौद्धिक विकास के साथ-साथ तर्क तथा निर्णय-शक्ति भी बढ़ती है।

शिशु के मानसिक विकास का पता सावधानी से उनकी रहन-सहन और खेल-कूद देखने से लग सकता है। अनेक शिशु खेलों को खेलमात्र समझकर खेलते हैं लेकिन अनेक शिशु खेल को एक गूढ़ विषय समझकर खेलते हैं और अपनी समस्या हल करते हैं।

किसी वार्ता को समझने के लिये शिशु बड़ी सोच-समझ से काम लेता है, कल्पना करता है।

तर्कशक्ति के साथ दृष्टिवेदन, मानसिक विधान और वेदन-बल का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

बिना देखे हम किसी वस्तु की तुलना नहीं कर सकते। हम तुलना करने के निमित्त देखते भी नहीं। घास के मैदान में दृष्टि डालते ही हमें जो पशु दिखाई

देते हैं, वे हमारे लिये पशुमात्र हैं लेकिन जो ग्वाला उनको चरा रहा है उसके लिये प्रत्येक गाय अलग-अलग प्रकार की है। यदि हमें विश्व का निरीक्षण भली प्रकार करना है तो हमें ग्वाले की दृष्टि से करना होगा जिसे अपने पशु का पूरा-पूरा बोध है।

छोटे शिशु को प्रारम्भ में सब लोग एक समान दिखाई देते हैं लेकिन इसमें तब तक दूसरी शक्तियों का पूर्ण रूप से विकाश नहीं हुआ रहता। जैसे-जैसे स्मृति का विकाश होता जाता है वैसे-वैसे उसे वस्तुओं में भेद दिखाई देने लगता है। दूसरे ही महीने से उसे माता, पिता और घर में आने वाले लोगों के मुँह पहचान में आने लगते हैं।

यदि कोई अपरिचित पुरुष शिशु को गोद में लेना चाहता है तो वह रोता है। उसका रोना यह सिद्ध करता है कि शिशु ने उसे पहचाना नहीं।

शिशु को एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ से तुलना करने में बड़ी बुद्धि लड़ानी पड़ती है।

किसी पदार्थ को देखने से और उसकी तुलना करने से हम अपने विचार स्थिर करते हैं। शिशु ऐसे पदार्थों के विषय में जैसे खाद्य पदार्थ, कुर्सी, मेज, चम्मच, पुस्तक इत्यादि के विषय में बड़ी सरलता से अपने विचार स्थिर कर लेता है। बड़ी चीजों के विषय में जैसे शहर, पड़ोस, सत्य इत्यादि के विषय में उसका बोध बहुत पीछे होता है।

[१०]

भाषा

भाषा द्वारा हम अपने विचार दूसरों को प्रकट करते हैं। यह एक ऐसा मंत्र है जिसके द्वारा हम मानव-जाति के ज्ञान-भण्डार और संस्कृति का पता लगा सकते हैं। यदि हम अपने मानसिक कोष का परीक्षण करें तो हमें मालूम हो जायगा कि हमने बहुत कम चीजें अपने अनुभव और देखने से सीखी हैं। हमारा ज्ञान-भण्डार और लोगों के ही शब्दों के सुनने या पढ़ने से बढ़ा है। लेखन-

कला के आविष्कार का ही यह फल है कि विश्व के लेखकों की कृतियाँ हमें उपलब्ध होती हैं । हम जब चाहें उन्हें खरीदकर पढ़ सकते हैं। विचार-शक्ति को बढ़ाने के लिये प्रकृति निरीक्षण उतना ही आवश्यक है जितना पढ़ना। पढ़ने के द्वारा वह विश्व की खोज स्वयं कर सकता है।

भाषा का अर्थ केवल मौखिक रूप से विचार प्रकट करना ही नहीं है। ऐसे चिह्न जिनके द्वारा हम अपने भाव व्यक्त कर सकते हैं, भाषा में सम्मिलित हैं। कोई व्यवस्थित रीति, पद्धति इत्यादि जिसके द्वारा हम अपने मनोभाव प्रकट करते हैं, भाषा कही जाती है। जैसे फूलों की भाषा, उँगली की भाषा, गूँगे बहरों के लिये संकेतों की भाषा इत्यादि।

मानव में अपने भाव व्यक्त करने की प्रेरणा आरम्भ से ही है क्योंकि हम दूसरे लोगों की सहायता से अपनी इच्छा तृप्त करते हैं। केवल अपनी इच्छापूर्ति के लिये ही हम अपने भाव व्यक्त नहीं करते। मनुष्य में यह इच्छा बड़ी प्रबल रहती है कि वह दूसरे को अपने दुःख-सुख का साथी बनाये।

भाषा विचारों को व्यक्त करती है—किसी भाषा को सीखने में हम उन विचारों का भी मनन करते हैं जिनके द्वारा वह भाषा बनी है। देखने से जो चीज हम सीखते हैं वह भाषा में पढ़ने से प्रत्यक्ष होती है। भाषा के द्वारा हम उन चीजों के नाम भी जानते हैं। नामों द्वारा हम विश्व को एक बंधुत्व में मिलाते हैं। बिल्ली हमारे लिये केवल एक की बिल्ली नहीं है। पर यह पशु जिसमें ये गुण पाये जाते हैं वह जहाँ भी पाई जावेगी, बिल्ली के नाम से पुकारी जावेगी।

शिशु के शिक्षण और उसके मानसिक विकास में भाषा का एक अपूर्व स्थान है। भाषा हमें विश्व के प्रत्येक पदार्थ को टुकड़े-टुकड़े रूप में व्यक्त करती है। और इन्हीं टुकड़ों को जोड़कर हमें विश्व का वृहत् रूप भी दिखाई देता है।

सांकेतिक शब्दों के हमारे मस्तिष्क द्वारा ग्रहण कर लिये जाने पर भाषा कभी भी व्यक्त या प्रकट की जा सकती है क्योंकि उन्हीं से भाषा बनी है एक मनो-वैज्ञानिक ने लिखा है कि "By their means we are to some

extent released from bonds of time and space and enabled to enter upon eternity"

शिशु का भाषा-ज्ञान—भाषा-भाव-प्रदर्शन में सहायता देती है। भाव-प्रदर्शन करने से पहले हमारे मस्तिष्क में जो अनेक विचार उठते हैं वे ही विचार भाषा द्वारा प्रकट किये जाते हैं।

किसी वस्तु तक पहुँचने के लिये शिशु कुर्सी या स्टूल की सहायता लेता है। आरम्भ में शिशु अपनी क्रियाशीलता या कर्मों के द्वारा भाव प्रकट करता है।

जब हम किसी वस्तु की अच्छी तरह कल्पना कर लेते हैं और उसे भाषा द्वारा भली भाँति प्रकट कर सकते हैं तब हम उस वस्तु की एक प्रकार से आनुमानिक व्याख्या करने लगते हैं।

शिशु किसी वस्तु की परिभाषा उसके काम को देखकर बनाता है। आरम्भ में शिशु के लिये (१) मेज—एक ऐसी चीज है जिसमें चीजें रक्खी जाती हैं। (२) घोड़ा—जिसमें सवारी की जाती है। (३) माँ—वह स्त्री है जो उसकी देखभाल करती है। जैसा जिसका काम है शिशु के लिये वही उसकी परिभाषा है। अवस्था के अनुसार शिशु की विचारधारा भी बदती है और धीरे-धीरे अपनी संकुचित परिभाषाओं को त्याग कर विश्व-मान्य व्याख्याओं को ही अपनी व्याख्या बना लेता है।

शिशु को भाषा सिखाते समय दो बातों का ध्यान रखना चाहिये—
(१) शिशु की ग्रहण-शक्ति और (२) भाव व्यक्त करने की शक्ति।

शिशु को इस समय विचार गहन करने हैं और नवीन शब्द भी सीखना है।

प्रथम कुछ मास तक शिशु भिन्न-भिन्नप्रकार की ध्वनि निकालता है। कितनी ही ध्वनि को हम लिपिबद्ध कर सकते हैं लेकिन अधिकांश ध्वनि ऐसी निकलती है जिसे विश्व की कोई भी भाषा लिपिबद्ध नहीं कर सकती। ऐसी ध्वनि को निरर्थक ध्वनि कह सकते हैं। धीरे-धीरे यही ध्वनि सार्थक ध्वनि में परिणत होती है। सार्थक ध्वनि से हम समझ जाते हैं कि शिशु को भूख लगी है या

पीड़ा हो रही है या वह खेल रहा है। स्वर सम्बन्धी ध्वनि पहले निकलती है जैसे आ आ, उ, उ उ कई शिशु एक ही ध्वनि को कई दिनों तक बार-बार निकालते हैं और फिर दूसरी प्रकार की ध्वनि निकालते हैं।

ल-र-ड कुछ ऐसे व्यजन हैं जिन्हें बालक बड़ी देर में सीखता है।

शिशु तुतलाकर बोलता है। जब वह प्रसन्न होता है तो उसके मुँह से भाषा या शब्द बड़े प्रवाह से निकलने लगते हैं।

प्रारम्भिक अवस्था में शिशु को यह समझना रहता है कि विशेष शब्दों का क्या अर्थ है। हमारा अनुकरण करते हुए वह स्वयं हाथ जोड़ता है और नमस्ते कहता है।

शिशु बोलने में हमारी नकल करता है। जो सुनता है वही बोलता है। इसलिये उसके उच्चारण को ठीक करने के लिये यह जरूरी है कि जब हम लोग बोलें तो वह हमारे उच्चारण को ध्यानपूर्वक सुने। हमें शिशु से साफ-साफ शब्दों में शुद्ध और धीरे-धीरे समझाकर बोलाना चाहिये।

जिन बालकों का उच्चारण बड़े होने पर ठीक नहीं होता उसका सारा दोष उसके माता-पिता या दाई पर है।

भाषा सिखाते समय शिशु को नये नये शब्द सिखाने चाहिये जिससे भाषाज्ञान के साथ उसका शब्द-भण्डार भी बढ़ता जाय। अनेक शिशुओं में बोलने की अपेक्षा अधिक शब्दबोध होता है।

ऐसा शिशु 'फूल' नहीं कह सकेगा पर 'फूल' कहने पर फूल की ओर देखने लगेगा। अर्थात् जिन-जिन पदार्थों का नाम उसे याद है उनका नाम लेने से उस ओर देखता है पर बोल नहीं सकता।

अवस्था की वृद्धि के साथ शब्द केवल शब्द ही नहीं रहते, शिशु उनका अर्थ भी समझने लगता है। बोलने की मांसपेशियों में स्फूर्ति आती है और साधारण उत्तेजना से शब्द मुँह से निकलने लगते हैं। पहले बाबा, मामा आदि केवल शब्द मात्र थे। अब शिशु को इन शब्दों से पिता और माता का बोध होने लगता है। अब वह बोलकर अपने विचार दूसरों तक प्रकट करने लगता है। अपने साथियों के साथ खेलने से, माता-पिता के साथ बोलचाल से

उसका शब्दकोष बढ़ता जाता है और वह प्रति दिन अपनी माता को नये शब्द सुनाकर अपने बौद्धिक विकास का परिचय देने लगता है।

अनेक शिशु बोलने से पूर्व अपने भाव संकेतों द्वारा व्यक्त करते हैं। चित्रकारी छोटे बालकों के लिये कला नहीं किन्तु भाव-प्रदर्शन का एक साधन है। जब शिशु एक घर का चित्र बनाता है तो उसमें दरवाजे और खिड़कियाँ ही नहीं बनाता, मेज, कुर्सी, चारपाई इत्यादि भी बनाता है।

बौद्धिक विकास के साथ उसके चित्र भी अच्छे बनने लगते हैं क्योंकि शिशु में चित्र खींचने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रीति से होती है। पालकों को चाहिये कि बालकों को चित्रकला सीखने में उत्साहित करें।

लेखन-कला—अनेक शिशु, जिनका पालन-पोषण साहित्यिक परिवार में हुआ है, लिखना भी बोलने की तरह शीघ्र सीख जाते हैं। प्रारम्भ में उनके अक्षर बेतुके होते हैं—धीरे-धीरे वे ठीक रूप धारण कर लेते हैं। तीन वर्ष की अवस्था में अक्षर, वृत्त, त्रिभुज, लम्ब इत्यादि का भी कुछ बोध हो जाता है।

पढ़ाना—मौन्टेसरी पद्धति के अनुसार पढ़ने के साथ साथ लिखना भी सिखाया जाता है। मनोवैज्ञानिक भी इस पद्धति को ठीक समझते हैं।

शिशु को पुस्तकों से बड़ा प्रेम है। पुस्तकों के चित्रों को वह बार-बार देखता है। इन्हें देखते देखते उसे स्वर और व्यंजनों का भी ध्यान होता है।

शिशु कई मास तक सुन नहीं सकता। वह हमें बोलते सुनता अवश्य है लेकिन हम क्या बोल रहे हैं यह उसकी समझ में नहीं आता। शब्द सुनने के केन्द्रों का विकास शिशु में धीरे-धीरे होता है। इसका विकास किसी शिशु में शीघ्र और किसी में देर से होता है और किसी में होता ही नहीं।

शिशु को पढ़ाने का श्रीगणेश छोटे-छोटे शब्दों से होना चाहिये। धीरे-धीरे शब्दों का क्रम दो से तीन फिर चार या पाँच तक बढ़ाया जा सकता है।

संख्या—मनोवैज्ञानिकों का मत है कि भाषा या शब्द-केन्द्र की तरह संख्या केन्द्र भी है, ये दो केन्द्र भिन्न हैं और इनका विकाश अलग-अलग होता है। कोई बालक जो पढ़ने में दक्ष होते हैं—संख्या बोलने में कमजोर होते हैं। संख्या

ज्ञान भी प्रारम्भ ही से करवाना चाहिये और बालक से ठीक-ठीक गिनती बुल-वानी चाहिये।

क्षमता--जो बालक दक्षबुद्धि होते हैं और अपने-आप चीजों को ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं यदि उन्हें बार-बार एकही चीज याद करने को कहा जाय जो उसने स्वयं सीख ली है तो उसके मानसिक विकास में वृद्धि नहीं होगी। इसी प्रकार ऐसे बालक को जो अल्पबुद्धि हैं बार-बार पढ़ाया जाय तो उसका दिमाग कमजोर हो जाता है और वह कुछ उन्नति नहीं कर पाता। अल्प बुद्धि वाले बालकों को छोटे-छोटे पाठ कई घण्टों के उपरान्त पढ़ाने चाहियें।

बालक खेल-कूद के द्वारा अधिक सीखते हैं। ऐसी-ऐसी खेल सामग्रियों का आविष्कार किया गया है जिनके द्वारा बालक खेलने के साथ लिखना-पढ़ना भी अल्प समय में बिना किसी प्रयास के सीख लेते हैं।

शिशु एक गम्भीर मानव है। वह स्वयं वस्तु-निरीक्षण करके विश्व की खोज करता है। हमें उसकी इस खोज में बाधक न बनकर सहायक बनना चाहिये।

शिशु बहुधा गलती भी कर बैठता है। उसको ठीक पथ में लाना चाहिये प्रेम से—धमकाकर या दबाव डालकर नहीं। हमें उसकी बुद्धि पर विश्वास करना चाहिये। यदि उसे सहायता की आवश्यकता है तो अपना हाथ आगे बढ़ा-इये लेकिन उसके पथ में कांटा बनकर उसे अपनी खोज करने से मना मत करिये क्योंकि एक दिन उसे विश्व की खोज करके उसमें प्रभुता प्राप्त करनी है।

परिशिष्ट

१

कारक-बोधन—Motor Co-ordination

संसार में प्रवेश करते समय :	संग्रहण प्रवृत्ति । शिशु पैदा होते ही इतनी जोर से उँगलियाँ पकड़ता है कि वह उठाया जा सकता है।
चार मास में	लकड़ी का घन देने से छूता नहीं।
६ ,,	वह पीठ के बल सोकर चीजों पर झपटता है।
७ ,,	दो हाथों में दो घन पकड़ सकता है।
८ ,,	अपनी हथेली के बल चीजें पकड़ सकता है।
९ ,,	वस्तु पकड़कर छेद में डालने का प्रयत्न करता है।
१० ,,	वह अपनी उँगली से भी पकड़ सकता है।
१ वर्ष में	प्याला पकड़कर पी सकता है।
१ ,, के बाद	अपने अँगूठे की मदद से चीजों को पकड़ता है, छोटी-छोटी गोलियाँ उठा सकता है और बुर्जा बना सकता है।

२

क्रिया-विकास—Gross Motor Development

१ मास में	अपना सर उठाता है
२ ,, ,,	अपनी पीठ के बल सोते-सोते हाथ-पैर छटपटाता है।
३ ,, ,,	अपना सर सँभाल सकता है।
५ ,, ,,	सहायता देने पर बैठ सकता है।

६½ मास में	अपने आप ३० सेकण्ड तक बैठ सकता है।
७ ,, ,,	पीठ के बल सुलाने से करवट बदलता है।
७½ ,, ,,	अपने आप बैठ सकता है।
१०½ ,, ,,	खड़ा हो सकता है।
१३ ,, ,,	चलने लगता है।

३

इन्द्रिय-संवेदन—Sense Perception

एक वर्ष में	दूर और नजदीक, बड़ा और छोटा, गोल-नुकीला ऊपर या नीचे का बोध होता है।
१८ मास में	१६ में से १२ छोटी-छोटी ईंटें एक पेटी में ठीक-ठीक रख सकता है।
२ वर्ष में	१२५ सेकण्ड में सब ईंटें बड़ी दक्षता से रख सकता है।
२½ ,,	रंगबोध तथा आकार-बोध होता है।

४

भाषा-विकास

१० मास में	प्रथम शब्द बोल सकता है।
१ वर्ष में	दो या तीन शब्द बोलता है।
१८ मास में	३ शब्द ,,
२ वर्ष में	२०० शब्द ,,
३ ,,	६६० ,, ,,
५ ,,	२००० तक शब्द बोल सकता है।

शिशु का बौद्धिक विकास

शिशु का बौद्धिक विकास

(१)

जब कभी हम एक ही अवस्था के दो तीन बालकों को एक साथ खेलते-कूदते देखते हैं जो हम उनकी तुलना करने लगते हैं। जैसे आशा ऊषा से लम्बी है, या गोपाल माधव से अधिक कार्य-प्रवीण है, या शीला इन सबसे अधिक बोलती है।

कभी-कभी गुण-विशेषक तुलना करते हैं:—कला आज फूली नहीं समाती। गोविन्द पिताजी के आने का समाचार सुन बड़ा उत्तेजित हो रहा है।

किसी विशेष घटना के घटित होने से बालकों के हृदय में जो परिवर्त्तन होता है वह क्षणिक है। यह दशा सर्वदा नहीं रहती।

कभी-कभी हम दूसरे या पड़ोस के बालकों से तुलना करते हुए कहते हैं—रमा को छोड़ वे सब बड़ी अवस्था के हैं। या अपनी अवस्था के लिहाज से वे अधिक काम करते हैं। या वे सब समझदार हैं लेकिन हरि कभी-कभी इस उमर में भी लड़कपन करता है।

जब कभी इस प्रकार से बातचीत होने लगती है तो वार्तालाप करनेवालों में परस्पर वाद-विवाद होने लगता है और वे कहने लगते हैं—'हाँ, लेकिन मैंने इस उमर के अनेक बालक देखे हैं जो इन सबसे लम्बे हैं, या इनके बोलने में कुछ उन्नति नहीं हो रही है। या ये बालक बहुत हल्ला-गुल्ला करते हैं।'

बहुधा बालकों के वर्तमान स्वभाव से परिचित होने के कारण हम उनके भविष्य के विकास के विषय में अपनी सम्मति देने लगते हैं कि बालक ऐसा होने वाला है। जैसे गोपाल कभी किसी से हार नहीं मानेगा। आशा अच्छी अध्यापिका बनेगी।

बाल-विद्यालयों में या घरों में अध्यापिकाएँ या अन्य लोग इसी प्रकार एक बालक की दूसरे बालक से तुलना करते हैं। प्रत्येक अध्यापिका को यह

समझ लेना चाहिये कि वालकों को जो खेल खिलाये जाते हैं या जो-जो वातें उनको समझाई जाती हैं उनसे उनकी वर्तमान आवश्यकता तो पूरी होती है। साथ ही उनके चरित्र-चित्रण तथा भविष्य पर भी भारी प्रभाव पड़ता है। अध्यापिका के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह अपनी कक्षा के समस्त वालकों के स्वभाव से तथा उनकी आवश्यकताओं से अच्छी तरह परिचित हो जावे। जब तक वह प्रत्येक वालक से परिचित नहीं हो जाती, उसे मालूम नहीं हो सकता कि कौन वालक कितनी उन्नति कर रहा है। अध्यापिका मनोवैज्ञानिक भी है।

परिमाणित निकष [Standard Tests]

(२)

वालकों की प्रतिदिन की उन्नति की परीक्षा करने के लिये किसी नापक की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा यन्त्र जिसके द्वारा हम वालकों की प्रत्येक वात के वावत जानकारी प्राप्त कर सकें, वनाना सम्भव नहीं। वालक का व्यक्तित्व तथा चातुर्य्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जो चौड़ाई या लम्बाई की तरह नापा जा सके। जो परिमाणित निकष नीचे लिखे जाते हैं उनसे वालकों की तुलना करने में कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है।

एक अध्यापिका किसी वालक की अवनति देखकर अत्यन्त दुखित होती है, दूसरे वालक के प्रति वड़ा रोष प्रकट करती है या क्रोधित होती है। एक वालक के प्रति दया और उसी दशा में दूसरे के प्रति क्रोध प्रकट करना उचित नहीं।

वौद्धिक विकास-परीक्षण फ्रांस देश से प्रारम्भ हुआ। सन् १९०५ ई० में विने नामक एक शिक्षा-विशेषज्ञ ने ऐसे 'युक्तिमान' निकाले जिनके द्वारा वालकों के वौद्धिक विकास का पता लगाया जा सकता है और साधारण योग्यता के वालक दुर्वल-मनस्क वालकों से अलग किये जा सकते हैं।

कुछ ही वर्ष बाद लुईटर मैन ने इस युक्तिमान द्वारा साधारण बुद्धि के विद्यार्थियों से प्रखर बुद्धिवाले बालकों को अलग करने की युक्ति निकाली। धीरे-धीरे इस विधि में और भी परिवर्तन होते गये और इनके द्वारा बालकों की शिक्षा का पता लगाया जाने लगा। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को बेने के अनुसंधानों से बड़े लाभ हुए और इनके द्वारा बालक की मानसिक वय (Mental age) का पता लगाया जाने लगा। लुई के कथनानुसार शिशु जब शैशवावस्था से बाल्यावस्था को प्राप्त होता है और बालक से प्रौढ़ बनता है तो वह प्रत्येक अवस्था के मानसिक विकास इसी अनुसंधान की सहायता से करता है। शिक्षा विशेषज्ञों तथा मनोवैज्ञानिकों ने 'बुद्धि गुण्य' (Intelligence Quotient) का पता लगाकर एक बालक के बौद्धिक विकास की तुलना दूसरे बालक के बौद्धिक विकास से की है।

बेने के मूल या आरम्भिक सारणी द्वारा ६ वर्ष या कम के बालकों के बौद्धिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। लेकिन वर्तमान शिक्षा-विशेषज्ञ और मनोवैज्ञानिक उस सारणी से सहायता लेते हैं जो बालकों के स्वभाव के अधिक मनन करने से बनी है।

बालकों के बौद्धिक या मानसिक विकास का अनुमान दो प्रकार के नापकों द्वारा लगाया जा सकता है।

१—विकास सूचक नापक (Developmental scale)

२—कार्य-शक्ति और चातुर्य-परीक्षण (Test of ability and intelligence)।

प्रथम नापक के अनुसार अध्यापिका को बालकों के स्वभाव का घर या स्कूल में अच्छी तरह अध्ययन करना और अपने अनुभवों का उसी अवस्था, श्रेणी और स्थिति के अन्य बालकों से मिलान करना पड़ता है। दूसरी पद्धति द्वारा समान अवस्था के बालकों से एक ही प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं या खेल खिलाये जाते हैं। यदि एक बालक को एक अपूर्ण चित्र को पूर्ण करने का प्रश्न दें तो दूसरे बालकों को भी वैसा ही अधूरा चित्र बनाकर पूर्ण करने

को कहना होगा। चित्र में या रङ्ग में किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं होना चाहिये।

गत वर्षों में मानसिक तथा बौद्धिक विकास परीक्षण करने के लिये अनेक प्रयोग किये गये हैं। अधिक प्रचलित प्रयोगों को यहाँ विस्तार पूर्वक लिखा जाता है।

Gesell's Developmental Scale

येल विश्वविद्यालय के शिशु मनोवैज्ञानिक केन्द्र में बालकों की आदत, खेल-कूद शारीरिक तथा मानसिक विकास का मनन करते-करते गेसल ने बालकों के बौद्धिक विकास का परीक्षण करने की ऐसी रीति निकाली है जो तीन मास से एक वर्ष तक के बच्चों के लिये काम में लाई जा सकती है।

गेसल ने अपना अनुसंधान एक मास के बालकों से आरम्भ किया। उसने यह पता लगाया कि तीन मास की अवस्था में बालक हमारे मुसकुराने पर आप भी मुसकुराने लगता है। लेकिन घण्टी हिलाने पर अपनी गर्दन उस दिशा की ओर पाँच मास तक नहीं करता जहाँ से शब्द आता है। सात मास में अनेक बालक भूमि से एक ईंट या लकड़ी उठाने लगते हैं। यदि उन्हें दूसरी भी दी जाय तो वह उसे नहीं पकड़ेंगे। दस मास की अवस्था में वह एक लकड़ी को फेंककर दूसरी को उठाने लगते हैं।

गेसल के मतानुसार बालकों का स्वभाव चार विभागों में बाँटा जाता है।

(१) कार्यकारी शक्ति का विकास इसमें वे सारे कार्य सम्मिलित हैं जो बालक को अपनी गर्दन उठाने के समय से सीढ़ी चढ़ने तक करने पड़ते हैं]।

(२) भाव प्रदर्शन या भाषा विकास [इसमें प्रथम शब्द बोलने से लेकर और अच्छी तरह बोलने तक और अपने विचार प्रकट करने तक सब सम्मिलित हैं]।

(३) समायोजन संविधान [इसमें बालक में परिस्थिति के अनुसार काम की शक्ति का आना सम्मिलित है]।

(४) वैयक्तिक और सामाजिक वर्तन [इसमें वे सब बातें सम्मिलित हैं जिनके द्वारा वालक अपने पास रक्खी हुई वस्तु का उपयोग करता है और यह सीखता है कि अपने निकट के लोगों से कैसा वर्ताव करना चाहिये । दो मास में वह हाथ-पाँव उछालता है । तीन मास में अपनी अँगुलियों से खेलता है, पाँच मास में वह अपने घर और बाहर के लोगों में अन्तर मालूम करता है और नौ मास में वह हाथ उठाकर 'टा-टा' करता है] ।

इन चार बातों के समीकरण से वालक के चरित्र विकास का अच्छी तरह अनुमान लगाया जा सकता है ।

मेरिल पामर की रीति (विधि)

गेसल की रीति द्वारा केवल एक से दो या ढाई वर्ष के वालकों के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है । छः या साढ़े छः वर्ष तक के वालकों की वुद्धि परीक्षा शिकागो स्कूल के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मेरिल पामर की परीक्षण रीति से किया जा सकता है । यह रीति वड़ी रोचक है और इसका वड़ा प्रचार है । वड़ी छानवीन और खोज के उपरान्त परीक्षण की यह रीति वनाई गई है । इस परीक्षण में वालक को एक ऐसी प्रयोगशील अवस्था में रक्खा जाता है, जिसमें वह अपनी ही अवस्था के अन्य वालकों से अपनी तुलना कर सके । परीक्षण सामग्री उनकी कठिनाई के क्रम से रक्खी जाती है अर्थात् सबसे कठिन प्रश्न सबसे प्रथम और उसके उपरान्त उससे सरल इत्यादि । परीक्षण ६ मास की प्रगति देखते हुए किया जाता है । कुछ प्रश्न सामग्री उसे एक ही बार दिखाई जाती है । जो वालक जितनी शीघ्रता से इन प्रश्नों को हल करता है उसे उतने अङ्क प्राप्त होते हैं । प्रत्येक प्रश्न पर एक अङ्क रहता है । वालक की मानसिक अवस्था का पता उसके प्राप्त किये हुए अङ्कों से मिल सकता है ।

मेरिल पामर की परीक्षा विधि वालकों के लिये इसलिये रोचक मानी जाती है कि यह सम्पूर्ण रूप से निवर्त्तन निकष (Performance Test) है । वालक अपना वार्तालाप का या परीक्षण का समय रङ्गीन चमकदार वस्तुओं

को छूने, सूँघने और प्रयोग करने में लगाता है। ये प्रयोग बड़े मनोरञ्जक होते हैं। जैसे खूटियों को छिद्रों में डालना। ईंटों से मकान, पुल इत्यादि बनाना, रङ्गीन ईंटों द्वारा चित्रपूर्ति करना। यह परीक्षण पद्धति इसलिये भी सफल मानी गई है कि इसको काम में लाने में बालक थकते नहीं। भाँति-भाँति के खेल खिलौनों में उनका मन लगा रहता है और वे धीरे-धीरे कठिन कार्यों को करने में प्रोत्साहित भी होते हैं।

परिमाणित परीक्षण विधि की आवश्यकता

परिमाणित परीक्षण से परीक्षक एक नियत पथ का अनुकरण करेगा। प्रश्न एक ही ढङ्ग के होते हैं। कौन उत्तर 'ठीक' और कौन 'अशुद्ध' माने जायँ इनका निश्चय परीक्षा काल से पूर्व हो जाता है। बिना इसके परीक्षण निष्फल है। शान्ति और धैर्य से काम लेने से कठिन काम भी आसान हो जाता है।

परिमाणित कार्य विधि निस्तारित स्वतन्त्रता भी देती है। परीक्षण करते समय अध्यापिका को बालकों का परस्पर मिलान या तुलना करने का मौका मिलता है। अनुभव के बढ़ने से अध्यापिका अपने कार्य में इतनी दक्ष हो जाती है कि उसे बालकों की आवश्यकता, उनकी त्रुटियों का पता लगाने में कुछ देर नहीं लगती।

यह कहना कठिन है कि यदि बालक का मानसिक विकास प्रारम्भ में जैसा होना चाहिये वैसा नहीं हुआ तो आगे चलकर भी वैसा ही रहेगा। अनेक बालक प्रारम्भावस्था में निर्बल बुद्धि होते हैं और आगे चलकर कार्यदक्ष और प्रवीण बन जाते हैं।

परीक्षण के समय बालक जो भी कार्य करता है वह बड़ा महत्व रखता है। मनोवैज्ञानिकों के लिये बालक को अच्छी तरह समझने का यह एक अनूठा अवसर है।

बाल-परीक्षण

परीक्षण करने के लिये कार्य कुशलता और नैपुण्य दोनों चाहिये। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न जो पूछे जा सकते हैं, प्रश्नावली के रूप में आजकल

उपलब्ध हैं। लेकिन उन्हें पढ़ने मात्र से कोई भी अध्यापिका परीक्षण कार्य में दक्ष नहीं समझी जा सकती है। बहुधा ऐसी अध्यापिकायें भी, जिन्होंने अपनी सारी अवस्था बालशिक्षण में व्यतीत कर दी है और जिन्होंने बालकों के स्वभाव का भली-भाँति मनन किया है, कभी-कभी भयङ्कर गलतियाँ कर बैठती हैं।

वर्तमान काल में व्यक्तिगत परीक्षण मनोवैज्ञानिक, शिक्षा विशेषज्ञ, विद्यालय-स्वास्थ्य-रक्षक और अध्यापक करते हैं। मनोवैज्ञानिकों को बालकों का शिक्षण सम्बन्धी अनुभव होना चाहिये और डाक्टर लोग जो इस प्रकार का परीक्षण करते हैं उन्हें मानसिक परीक्षण कला पर स्वयं शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

अध्यापिकाओं को भी इस प्रकार के अल्पकालीन पाठ्यक्रम से अपनी ज्ञान-वृद्धि करानी चाहिये। बिना इस प्रकार के शिक्षण से कोई भी बालपरीक्षण कला में निपुण नहीं हो सकता है।

बाल परीक्षण जल्दी-जल्दी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक बालक कम से कम एक घण्टे का समय लेता है। सात वर्ष के बालक के परीक्षण के लिये काफी सामग्री उपलब्ध हो सकती है और पर्याप्त समय भी मिलता है। जिन बालकों के लिये हम अपनी सम्मति जल्दी निश्चित नहीं कर पाते वे अध्यापिकाओं के लिये एक समस्या बन जाते हैं। यदि इन बालकों का ध्यानपूर्वक परीक्षण किया जाय और उनके स्वभाव का मनन किया जाय तो हम उनकी निर्बलताओं पर अधिक प्रकाश डाल सकते हैं।

जो बालक बहुत पिछड़ गये हैं या बैकवर्ड समझे जाते हैं उनका परीक्षण उनका लिखना-पढ़ना प्रारम्भ करने से बहुत पहले होना चाहिये। यदि किसी पाँच वर्ष के बालक के परीक्षण के उपरान्त उसे निर्बल पाया जाता है तो उसको आगे पढ़ने या उससे जटिल खेल-कूद करने से रोकना चाहिये। जब वह उस कोटि तक पहुँच जाय, जिस पर उस अवस्था के बालकों को पहुँचना चाहिये तब उसे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करना चाहिये। निर्बल बालकों को आगे बढ़ाना सरासर भूल है। एक वर्ष और उससे भी अधिक समय यदि उसे अपनी

कमी पूरी करने में लगानी पड़े तो यह समय नष्ट करना नहीं कहा जाता। क्योंकि इस अवधि में वह खेलों में दक्षता प्राप्त कर लेता है और वह अपने शरीर के अङ्गों से अच्छी तरह काम लेना तथा उन पर नियन्त्रण रखना सीखता है। इसी बीच में उसमें मानसिक परिपक्वता भी आ जाती है।

जिन बच्चों का परीक्षण करने के लिये माता-पिता लालायित रहते हैं उनका परीक्षण हो जाना चाहिये। अनेक माता पिता बालकों को आगे बढ़ाने के लिये जिद करते हैं। यदि परीक्षक उसमें त्रुटि पाते हैं तो माता-पिता को समझा देना चाहिये। उनका ऐसी बातों में जिद करना बालक के भविष्य को अन्धकार में डालना है।

अन्य कठिनाइयाँ

बड़े-बड़े शहरों में आजकल शिशु-निर्देशन-संस्था और मनोवैज्ञानिक केन्द्र खुल गए हैं। जहाँ बालकों के आचार-विचार, स्वभाव, मानसिक तथा शारीरिक विकास सम्बन्धी अनुसंधान किया जाता है। जो बालक अध्यापिकाओं के लिये एक समस्या हो गये हैं उन्हें इन्हीं केन्द्रों में भेजना चाहिये।

जो बालक बोल ही नहीं सकते या बोलेंगे ही नहीं वे कुटुम्ब के लिये एक भारी समस्या उपस्थित कर देते हैं। जब तक बालक विद्यालय से भली-भाँति परिचित नहीं हो जाता और अध्यापिकाओं से हिल मिल नहीं जाता उसे किसी प्रकार का दण्ड नहीं देना चाहिये। न बोलना गत्यवलम्बन का सूचक है। जो बालक अवाचिक या गूँगा रहता है उसका परीक्षण शीघ्र होना चाहिये। कभी-कभी बालक की अक्रियशीलता से ही उसकी अवाचिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी ऐसा बालक मंद बुद्धि विषमायोजित होने पर भी मन्द बुद्धि प्रतीत नहीं होता।

युक्ति से परिमाणित परीक्षण करने, बालकों के दिन-प्रतिदिन के निरीक्षण, खेलकूद को देखने, मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा विशेषज्ञों से परामर्श करते रहने से कठिन तथा पिछड़े हुए बालकों का सुधार हो सकता है।

परिमाणित परीक्षण के विषय में अनेक विद्वानों की भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ हैं। कोई ऐसे परीक्षण का उपयोग करते हैं और इनको अच्छा समझते हैं और कोई इसके विपक्ष में हैं। लेकिन यह बात सबको माननी पड़ेगी कि एक परिमाणित परीक्षण द्वारा हम यह अवश्य पता लगा सकते हैं कि अमुक अवस्था के बालक क्या-क्या कर सकते हैं और उसी अवस्था के अन्य बालकों से वे कितने आगे या पीछे हैं।

बौद्धिक विकास-परीक्षण की कुछ रूप-रेखा

श्रीयुत वैलनटाइन ने अनेक वर्षों के अनुभव के उपरान्त निम्नलिखित परीक्षण निकष निकाले हैं। अध्यापिका इन्हीं के आधार पर अपने अनुभव और मनोवैज्ञानिकों के परामर्श से अन्य निकष निर्धारित कर सकती है।

[ढाई वर्ष के बालकों के लिए]

(१)
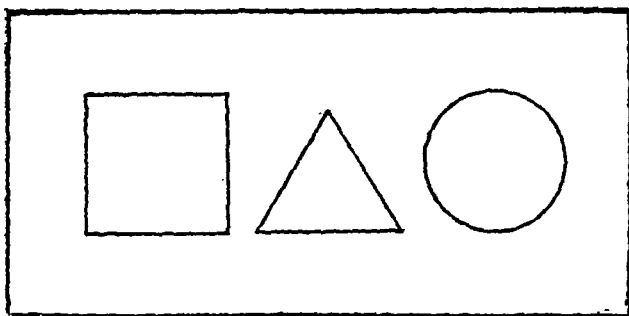
चित्र नं० १

एक ६" × ६" लम्बा गत्ता लो। उसमें एक वृत्त, एक आयत और एक त्रिभुज काटो। इस प्रकार काटो कि काटी हुई आकृतियाँ अपने-अपने छिद्रों में ठीक-ठीक बैठ जायँ।

एक बार अध्यापिका बालक के सामने प्रत्येक आकृति को उसके छिद्र में बिठाये, फिर उनको हटाकर बालक को उन्हें रखने की आज्ञा दे।

[नोट—प्रत्येक आकृति अपने छिद्र में बिठा देने से यह प्रश्न हल समझा जाय। यदि ऐसा न कर सके तो उसे केवल एक बार और दिखाकर मौका देना चाहिये, इससे अधिक नहीं।]

अब गत्ते को इस प्रकार रक्खो कि त्रिभुज का आधार बालक के विपरीत हो। फिर बालक से आकृतियों को रखने के लिये कहो। केवल दो मौके देना चाहिये।

(२) शरीर के अंगों का नाम पूछना—

(अ) अपनी नाक दिखाओ ?

(ब) अपनी आँख दिखाओ ?

(स) अपना मुँह दिखाओ ?

(द) अपने बाल दिखाओ ?

(ज) अपना घुटना दिखाओ ?

पाँच में तीन का उत्तर ठीक मिलना चाहिये।

(३) साधारण वस्तु ज्ञान—

ऐसे पदार्थ छाँटो जिन्हें बालक रोज देखता है और छूता है, जैसे चम्मच, प्याला, खटिया, खिलौने, दरवाजा इत्यादि। पदार्थों में हाथ लगाकर पूछो—यह क्या है ?

बालकों को छः में ४ का नाम ठीक-ठीक बताना चाहिये।

(४) कैंची से कागज काटना—

[कैंची से एक बड़े कागज को बीच से काटो और बालक को कैंची उठाने का तरीका, कागज पकड़ना और काटना देखने के लिये कहो। जब काट चुको तो कैंची को कुछ दूर पर रक्खो और बालक से कहो—"कैंची ठीक उसी तरह से लाओ और जिस तरह मैंने कागज काटा ठीक उसी तरह काटो।" बालक को कैंची पकड़ने में सहायता दो।]

नोट--यदि बालक किसी भी दिशा में कागज काटे तो वह इस परीक्षण में उत्तीर्ण समझा जाय।

(५) चीजों के काम द्वारा उन्हें पहिचानना—

एक बड़ा थाल लो। उसमें पाँच चीजें रक्खो जैसे प्याला या गिलास, जूता, पैसा, चाकू, कंघी इत्यादि। फिर बालक से पूछो—"हम दूध किससे पीते हैं?" बालक को प्याला दिखाना चाहिये। "तुम पाँवों में क्या पहनते हो?" उत्तर—जूता इत्यादि।

नोट—पाँच में तीन उत्तर ठीक होने चाहिये।

(६) कहानी कहना—

बालक से कुछ बोलने के लिये कहो और प्रश्नों द्वारा सहायता देते हुए पूछकर देखो कि क्या वह अपने अनुभव सुना सकता है। यदि टूटे वाक्यों में भी वह कुछ कह सके तो वह उत्तीर्ण समझा जाय।

(७) दो या तीन शब्दों के वाक्यों का दुहराना—

बालक से कहो कि वह ध्यान से सुने और साथ साथ बोलता जाय। अन्दर आओ। दूध लाओ। अम्मा आई इत्यादि। तीन में दो ठीक बोलने से उत्तीर्ण समझा जाय।

(८) 'मैं' तुम और 'हम' का बोलने में प्रयोग—

यदि तीन में दो ठीक हों तो पास समझा जाय। परीक्षक को इस प्रकार वार्तालाप करना चाहिये कि इनका प्रयोग बालक की समझ में भली भाँति आ जाय और वह इनको प्रयोग में ला सके।

[तीन वर्ष के बालकों के लिये]

(१) आकृति वाला गत्ता—जैसे ऊपर काम में लाया गया है अब भी काम में लाया जा सकता है। उसमें दो आकृतियाँ और काटकर आकृतियों को ठीक छिद्रों में रखने को कहना चाहिये। गत्ते को प्रत्येक दिशा में घुमाकर आकृतियों को ठीक छिद्रों में डालने को कहना चाहिये।

केवल एक ही मौका देना होगा और बालक को इस अवस्था में छिद्र और आकृति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

(२) शरीर के तथा मुँह के भागों को पूछना—पाँच में चार अंगों के नाम बताने से उत्तीर्ण समझा जाय।

(३) अपने आप जूते पहनना—परीक्षा लेने से पूर्व एक दो बार ठीक ठीक प्रकार से जूते पहनने में सहायता देना। फिर परीक्षा लेना।

नोट—एक जूता कम से कम मय मोजों के ठीक-ठीक पहनना होगा। तस्मे बाँधना जरूरी नहीं।

(४) वृत्त खींचना—एक वृत्त खींचकर बालक के सामने रख दो। बालक से उसी तरह का एक वृत्त बनाने को कहो। आधा वृत्त बनाने पर भी बालक उत्तीर्ण समझा जाय। तीन मौके दो।

(५) 'मैं', 'तुम', 'वे', 'सब'—इनका पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिये। पाँच में तीनों का शुद्ध प्रयोग होने से उत्तीर्ण होगा।

(६) दस प्रश्न इस प्रकार के पूछना—

कौन दौड़ता है ?	उत्तर—घोड़ा या कुत्ता
कौन सोती है ?	,, अम्मा या दीदी
कौन रोता है ?	,, बेबी इत्यादि

कम से कम आठ उत्तर ठीक होने चाहिये।

(७) बाग का कार्य—चित्र नीचे दिया गया है।

अपनी पैन्सिल का पिछला सिरा ठीक रास्ते से ले जाकर वापस लाना। रेखा छूना मना है।

बालक को अपनी पैन्सिल दो पर तीन बार ले जाकर तब वापस आना चाहिये। लाइन छूना नहीं चाहिए। (देखिये चित्र नं० २)

(८) अंक या गिनती दुहराना—अध्यापिका धीरे-धीरे तीन गिनती बोले जैसे ३, ७, ४ और बालक को उन्हें दुहराना चाहिए। एक बार ठीक कहने

पर अध्यापिका फिर दूसरी गिनती बोले। इसी प्रकार चार मौके देना चाहिए।
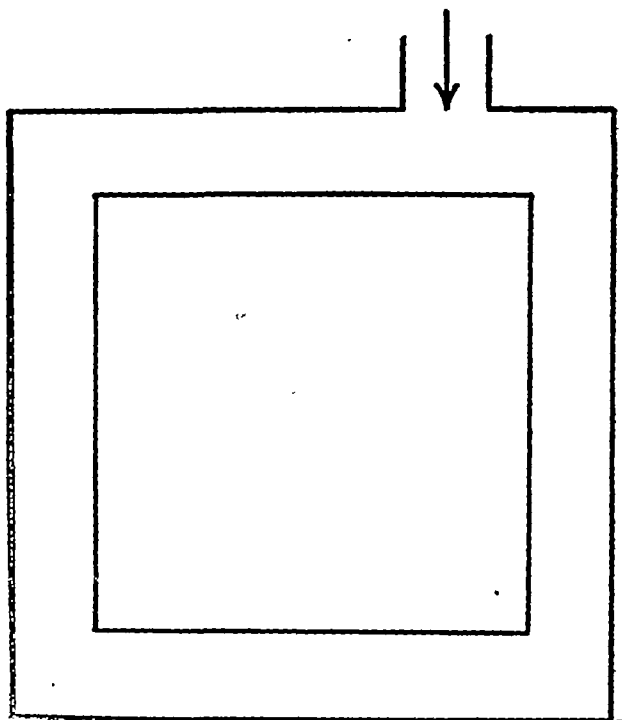
चित्र नं० २

[साढ़े तीन वर्ष के बालकों के लिए]

(१) एक ऐसा चित्र लो जिसकी अनेक चीजें बालकों ने वास्तविक रूप से देखी हों जैसे कुत्ता, बैलगाड़ी, डाकिया, दुकान, पुलिस-इत्यादि। ऐसे चित्र दिखाकर बालक से चित्र में प्रत्येक का नाम पूछो। अधिक से अधिक नाम बताने पर सफल समझा जाय।

(२) एक पशु जिसे बालक ने अच्छी तरह देखा हो जैसे कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, इत्यादि उसका चित्र लेकर उसके दो या तीन भाग करो और उनको

अलग-अलग रक्खो। बालक से उन तीनों भागों को ठीक से रख कर चित्र पूरा करने को कहो।

चित्र टेढ़ा मेढ़ा न हो। केवल एक ही मौका देना चाहिए। चित्र २ इंच से कम छोटा न हो।

(३) तीन शब्दों के वाक्यों को सुनकर दुहराना, जैसे—

(अ) मेरे पीछे जाओ।

(ब) मुझे रोटी दो।

(स) कुत्ता भों-भों करता है।

इन तीनों में एक को शुद्ध कहना।

(४) रंग की पहचान—मेज में तीन रकाबियाँ रक्खो। एक में सफेद, दूसरे में काला और तीसरे में लाल कागज रक्खो।

इसी प्रकार के तीन टुकड़े लेकर बालक के हाथ में दो और उससे ठीक रंग के कागज ठीक रकाबी में रखने को कहो।

(५) कागज मोड़ना—चिट्ठी लिखने का एक कागज लो। इसको बालक के सामने मोड़ो। फिर उसे बीच में से मोड़ो। अब कागज खोलकर बालक को दो और उससे मोड़ने को कहो।

कागज ठीक मुड़ना चाहिए। यदि किनारे ठीक नहीं मिलते तो कुछ परवा नहीं।

(६) नकल करना—बालक से नाटक के ढंग में दुकानदार की, डाक्टर की या माता और बच्चे के नहलाने की ठीक ठीक नकल करने को कहना। परीक्षा करते समय इसका ख्याल रहे कि नकल पूरी-पूरी और ठीक हो।

(७) 'दो' वस्तुओं का ज्ञान—मेज में बटन, दियासलाई, प्याले और रकाबी रक्खो। आज्ञा दो 'एक बटन रकाबी में रक्खो।' फिर बोलो 'दो बटन हमें दो।' इस प्रकार के परीक्षण से एक या दो वस्तुओं का ज्ञान होता है।

(८) रेखागणित की आकृतियों का मिलान करना—

एक गत्ते में रेखा गणित की कुछ आकृतियाँ काटो, जैसे त्रिभुज, चतुर्भुज, समकोण, षट्कोण, रेखा, वृत्त, जोड़ का चिह्न, गुणा का चिह्न, आयत इत्यादि।

और बालक से उन छिद्रों में ठीक-ठीक आकृति रखने को कहो। १० में पाँच ठीक होने से बालक उत्तीर्ण समझा जाय।
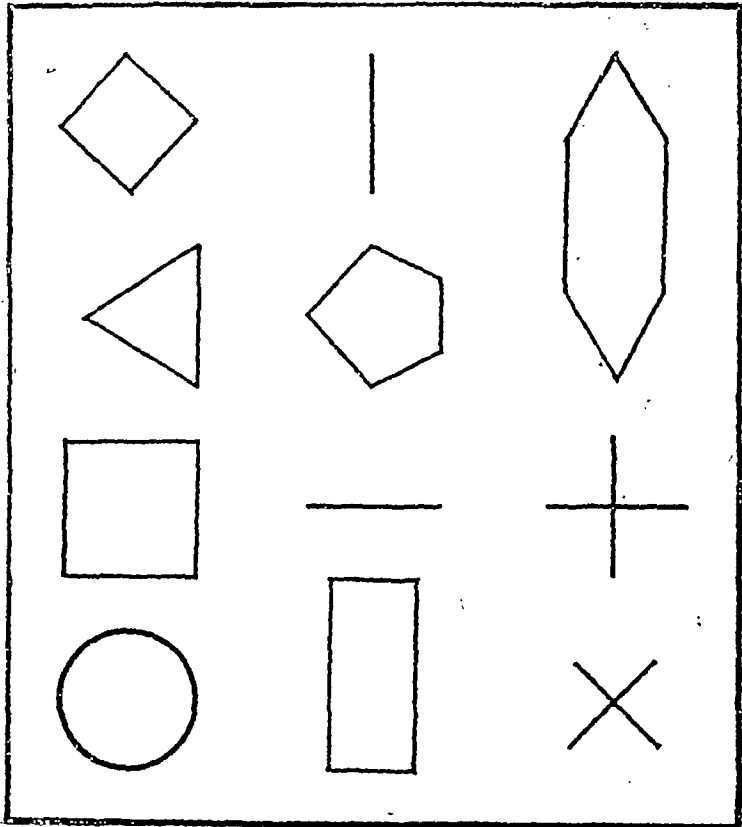
चित्र नं० ३

[चार वर्ष के बालक के लिए]

(१) बड़े और छोटे का ज्ञान-दो रेखा एक बड़ी और दूसरी कुछ छोटी २" की दूरी पर बनाओ। बालक से पूछो कि कौन बड़ी है या कौन छोटी।

ठीक उत्तर देने पर कागज को खड़ा करो, फिर तिरछा करो और पूछो। प्रत्येक दशा में बालक को ठीक-ठीक उत्तर देना चाहिए।

(२) गिनना--मेज में चार पैसे रक्खो। बालक को गिनने का आदेश दो। प्रत्येक पैसे पर अँगुली रखकर गिनती बोलना चाहिए।

यदि प्रथम बार उत्तर ठीक न दे सके तो एक अवसर और देना उचित होगा।

(३) चार-पाँच शब्दों के वाक्यों को कहना—

(अ) मुझे दाल और रोटी दो।

(ब) कुत्ता बिल्ली के पीछे दौड़ा।

(स) मुझे भी अपने साथ ले चलो।

सब वाक्यों को शुद्ध उच्चारण से बोलना।

(४) रेखागणित की आकृतियों का ठीक-ठीक छिद्रों में रखना--

(५) सोच-विचार के प्रश्न पूछना, जैसे—

(अ) हम घर क्यों बनाते हैं ?

उत्तर—रहने के लिये, सोने के लिये, बैठकर खाने के लिये। सब ठीक है।

(ब) कपड़े भीगने पर क्या करोगे ?

उत्तर-कपड़े बदल लेंगे, दूसरे कपड़े पहिनेंगे, सुखा लेंगे। सब ठीक।

यदि उत्तर दे—माता के पास चले जावेंगे तो आधा ठीक समझा जाय।

(स) भूख लगने पर क्या खाओगे ?

रोटी, केला, मिठाई इत्यादि, ठीक। माता के पास जावेंगे, गलत।

(६) कागज में निम्नलिखित चित्र बना कर बालक से अपनी पैन्सिल का पिछला भाग इस तरह अन्दर ले जाने को कहो कि वह बिना रेखाओं को छुए अन्दर ले जाकर वापस ला सके।
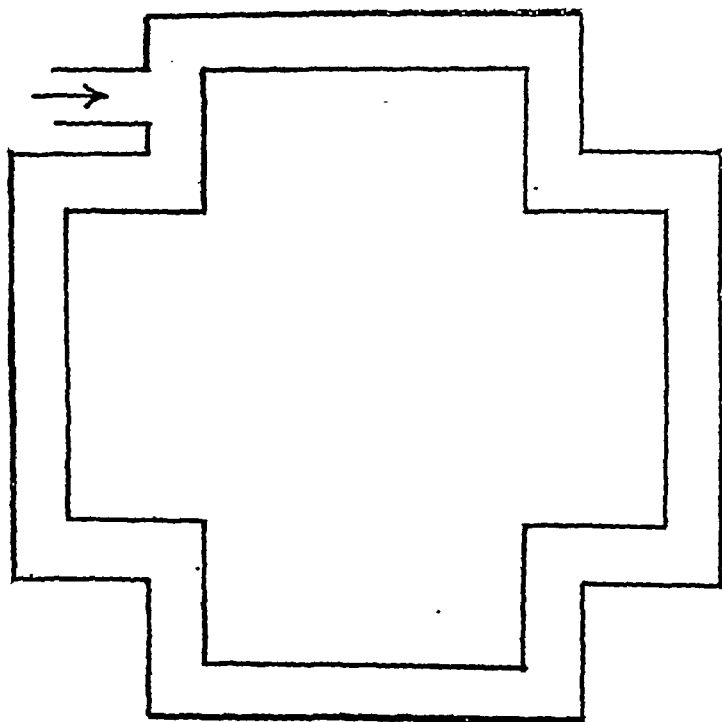
चित्र नं० ४

(७) जिस प्रकार के प्रश्न ३ वर्ष के बालक से पूछे गये थे, पूछिए। २० प्रश्नों में १२ उत्तर ठीक होने चाहिएँ।

प्रश्न—मेंढक पानी में क्या करता है ?

उत्तर—तैरता है।

(८) बालक को भिन्न-भिन्न पुरुषों की आकृतियाँ दिखा कर पूछो--कौन सुन्दर है ? बालक को छः चित्रों की जोड़ियों में प्रत्येक जोड़ी में एक सुन्दर मुँह एक ही बार बताना चाहिए। दो मौके नहीं देना चाहिए।

चित्र नं० ५
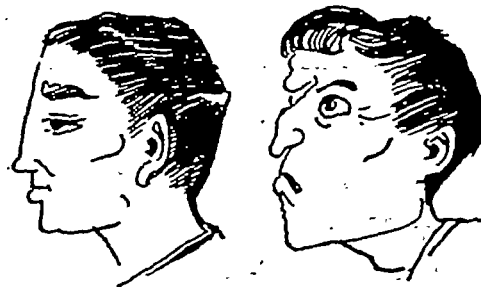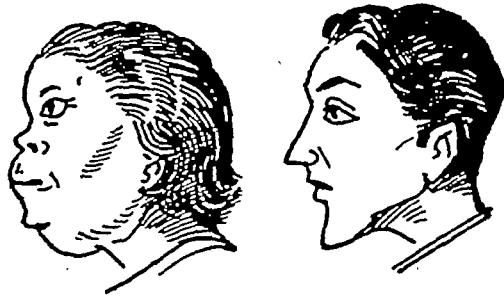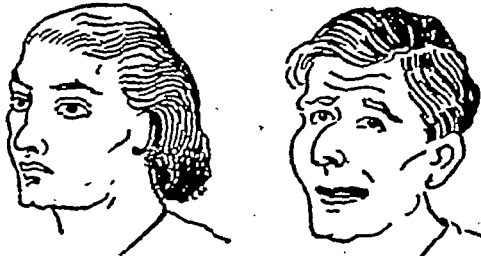
[पाँच वर्ष के बालकों के लिये]

(१) प्रातःकाल, दोपहर, सन्ध्या और रात्रि का बोध।

प्रश्न—(अ) इस समय दिन है या रात?

(ब) दोपहर है या सन्ध्या ? इत्यादि

प्रत्येक का उत्तर ठीक-ठीक मिलना चाहिए।

(२) चित्र खींचना—बालक से एक आदमी का चित्र बनाने को कहना। चित्र ऐसा बना हो जो आदमी जैसा मालूम पड़े। हाथ, पाँव यदि सीधी रेखा से बनाये गये हैं, ठीक समझे जायँ। आदमी सर से पाँव तक पूरा हो। जूते टोप इत्यादि की आवश्यकता नहीं।

[सारा चित्र बनाने के लिये एक अंक है।]

यदि कोई हाथ या पाँव न बना हो, प्रत्येक के लिए $\frac{1}{8}$ अंक काटा जाय।
यदि कोई अंग ठीक नहीं बना हो या अलग-अलग बना हो, $\frac{1}{8}$,, ,,।
आँख, मुँह, नाक, कान के स्थान नहीं दिखाए गए हों, $\frac{1}{8}$ अङ्क काटा जाय।

(३) बोलने की शक्ति—स्पष्ट और पूर्ण वाक्य बोलना या दोहराना आना चाहिए।

अपने पीछे-पीछे बालक से कहलाओ—

(अ) यदि तुम स्कूल जाओ तो अपनी पुस्तक लेते जाना।

(ब) डाकिये के आने पर कुत्ता भोंकने लगता है।

दोनों में एक सही होना चाहिये।

(४) इसको पढ़कर बालक को समझाओ—दो चूहे एक बिल में हैं। उसमें से एक बाहर निकला। वह एक घर में गया और उसने सब कमरे की यात्रा की। जिधर से घुसा फिर उधर नहीं लौटा। अन्त में उसे एक रोटी का टुकड़ा मिला जिसे वह खाने लगा। इतने में दूसरे चूहे को भूख लगी। अब बताओ वह कैसे उस रोटी तक पहुँचे।

नोट--एक बार पैंसिल के पिछले भाग से उसे निम्नलिखित चित्र में सारा रास्ता दिखा दो।

रेखा छूना मना है। पीछे भी मुड़ना नहीं है। घर का कोना कोना ढूँढ़ना है।
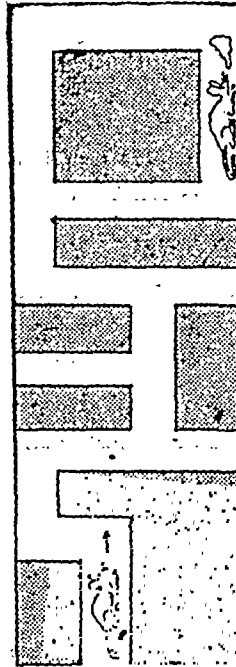
चित्र नं० ६

(५) चार संख्या तक बोलना--धीरे-धीरे चार गिनती बोलो, जैसे ८, ३, ६, १। दो बार बोलने में उत्तर ठीक मिलना चाहिए। लेकिन प्रत्येक बार गिनती बदली जाय जैसे २, ४, ७, ६ या ६, १, ५, २ इत्यादि।

(६) तीन आदेश एक साथ देना—क्या तुम यह चाबी देख रहे हो? जाओ इसे मेज में रक्खो। मेज में जो मोटी पुस्तक है उसे ले आओ। कमरे का दरवाजा बन्द करते आना।

बालक को प्रत्येक आदेश भली भाँति समझाया जाय। जैसे तुमको चाबी लेकर मेज़ पर रखनी है, मोटी पुस्तक ढूँढ कर उठानी है और आते समय दरवाजा बन्द करना है।

नोट—इसका पूरा पालन करने में गल्ती नहीं हो।

(७) कहानी की पूर्ति करवाना—बालक को निम्नलिखित कहानी सुनाते जाओ और बीच-बीच में रुक-रुक कर रिक्त स्थानों की पूर्ति करने में सहायता लो। यही उसका परीक्षण है।

आज बड़ा सुन्दर दिन है। आसमान — है। सूरज बहुत — चमक रहा है। गोपाल और मीना टहलने गये हैं और बाजार से — खरीद लाये। उनको रास्ते में — मिले। इतने में आसमान में — छा गये — गरजने लगे दोनों — घर वापस आये। लेकिन घर पहुँचने के पहले ही — आई और उनके कपड़े — गये घर आने पर अम्मा ने उनके — बदले।

नोट—कहानी बार-बार पढ़कर सुनानी चाहिए जिससे बालक अनुमान लगा सके कि कौन से शब्दों से सारा वाक्य पूरा हो सकता है। यदि बालक पाँच वाक्य भी पूरा कर सके तो उत्तीर्ण समझा जाय।

(८) सामग्री का प्रयोजन पूछना—

प्रश्न—कुर्सी क्या है,

चम्मच क्या काम आती है, मेज किसकी बनी है और क्या है? इत्यादि। पाँच में से तीन प्रश्नों का उत्तर बालकों को ठीक-ठीक देना चाहिये।

६ वर्ष के लिये

(१) चित्र वर्णन—एक बाजार का, रास्ते या विद्यालय का चित्र बालक को दिखलाओ। जो-जो बात उसकी समझ में आवे उसे पूरे-पूरे वाक्यों में कहलवाया जाय।

(२) गिनती दोहराना—जैसे ५, २, ६, ४, ७, या ३, ५, ८, १, ६ या, ७, ६, २, ४, ३ या ६, ३, ५, ८, ७।

धीरे-धीरे प्रत्येक संख्या के बाद दो सेकेण्ड तक रुकना चाहिये। बालक को चार मौके दिये जाँय।

(३) चित्रों में समानता और भिन्नता बताना—दो प्रकार के चित्र बनाकर बालकों को दिखाना और उनकी समानता और भिन्नता मालूम करवाना, जैसे एक चीन देश के आदमी का मुँह और एक भारत के आदमी का मुँह दिखाकर उसके आँख, नाक, बाल, मूँछ इत्यादि के विषय में पूछना।

(४) दूध और पानी में अन्तर—काँच और लकड़ी में, बिल्ली और कुत्ते में क्या अन्तर है, पूछना।

५ में २ ठीक कहने से उत्तीर्ण समझना चाहिये।

(६) निम्नलिखित चित्र में बिना रेखा छुए अन्दर जाना और फिर बाहर लौट आना—

चित्र नं० ७
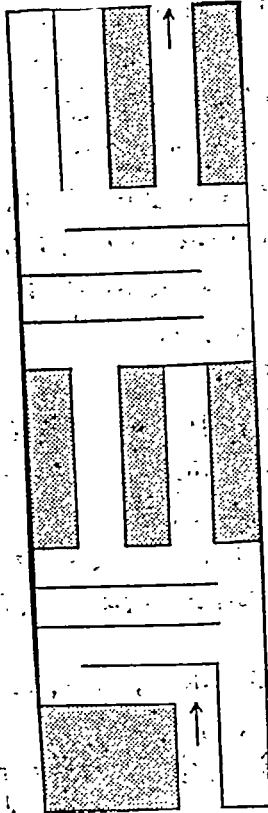
(७) लम्बे वाक्यों को पूरा-पूरा और स्पष्ट कहना—

(अ) मैं घूमने जा रहा हूँ, क्या तुम भी चलोगे।

(ब) यदि घर में कोई मिलने आवे, कह दीजिये मैं बाहर जा रहा हूँ।

(स) बाजार से बैगन, गोबी और मटर लाओ।

दो कम से कम ठीक बोलना चाहिये।

(८) निम्नलिखित वाक्यों में कम से कम चार ठीक बताना चाहिए—

(अ) भाई लड़का है और बहिन — है।

(ब) दिन में प्रकाश होता है और रात में —।

(स) सूरज दिन में चमकता है और चाँद — में।

(द) कुत्ता भौंकता है और बिल्ली — करती है।

(९) दो गत्ते के २"×३" चौड़े समकोण टुकड़े लो। उनमें से-से दो त्रिभुज काटो। फिर उनको अलग-अलग दिशा में रखकर बालक से कहो कि इन दो त्रिभुजों को मिलाकर एक आयत ऐसा बनाओ।
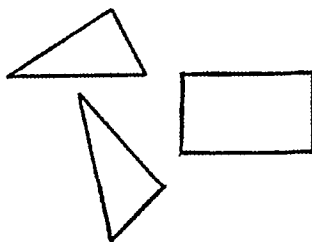
(१०) वाक्यों की पूर्ति करना—

(१) लीला बाग से दौड़ती-दौड़ती माँ के पास आकर कहने लगी—'अम्माँ मेरे हाथ मैले हो गये क्योंकि मैं —।

(२) रमेश ने दूध पीते-पीते कहा— यह बहुत गरम है इसे — होने दो।

(३) मोटर के नीचे आने से एक — दब गया और — हो गया।

दो उत्तर ठीक होने चाहिये।

आपका शिशु

शिशु और माँ

माता-पिता अपने बालकों के लालन-पालन और स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का ध्यान तो रखते ही हैं, पर उनके स्वभाव और चरित्रनिर्माण की ओर उनका ध्यान बहुत कम जाता है। बालक दो और पाँच वर्ष की अवस्था के बीच ऐसी समस्यायें उपस्थित कर देता है, जिससे वे हैरान हो जाते हैं। माताओं द्वारा बहुधा घरों में यही सुनने में आता है "मैं नन्हे से तंग आ गई हूँ। वह इतना शरारती हो गया है कि उसका सुधरना कठिन है।" या "मुन्नी बड़ी मुँहफट या ढीठ हो गई है।" "वह बड़ा धूर्त है,—मुझे कुछ समझता ही नहीं।" माता को उसके दुर्गुण तो दिखाई देते हैं। वह उन्हें, दूर करना भी चाहती है; पर वह कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं करती कि नन्हे कैसे शरारती बन गया? मुन्नी मुँहफट क्यों हुई?

हाँ, यह सत्य है कि शिशु कुछ पैतृक गुणों तथा अवगुणों को लेकर उत्पन्न हुआ है परन्तु यह माता-पिता के वश की बात है कि वे अवगुणों को दूर और सद्गुणों को विकसित करें। बहुधा यह देखा गया है कि माता-पिता प्यार के वश में होकर बच्चों में पड़ी बुरी आदतों को समय पर दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। आदतें धीरे-धीरे ऐसी जड़ जमा लेती हैं कि उनसे पीछे छुटकारा दिलाना कठिन हो जाता है। यदि हम चाहें कि हमारा बालक सर्वदा हँसमुख रहे, आज्ञाकारी हो, हमें प्यार करे और हमारा आदर करे तो हमें उसके शिक्षण की ओर उदारता पूर्वक ध्यान देना होगा। हमें उसकी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था से परिचित होना पड़ेगा। उसकी आवश्यकताओं की अवस्थानुसार पूर्ति करनी पड़ेगी। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इस अवस्था में उसकी बुद्धि का विकास हो रहा है। उसे प्रत्येक वस्तु को जानने की जिज्ञासा तथा उत्सुकता है। वह हरएक वस्तु का नाम, उसके काम तथा उसकी उत्पत्ति आदि के विषय में जानना चाहता है। उसके लिये प्रत्येक वस्तु नवीन है। जो वस्तु उसके सामने

आती है उसे वह जानना चाहता है, किन्तु उसके समझने की शक्ति अभी पूर्ण विकसित नहीं हुई है। वह थोड़ा-थोड़ा संग्रह कर अपने ज्ञान-भण्डार की वृद्धि करता है। ऐसी अवस्था में उसके ज्ञान-भण्डार के पल्लवन के लिए हमें विशेष सचेष्ट होना चाहिये तथा उसके प्रश्नों का उत्तर देकर हमें उसकी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति करनी चाहिए, न कि उसके प्रश्नों की झड़ी से ऊबकर उसे धमकाना या पीटना चाहिए।

बालक की भलाई और अपनी वस्तुओं की रक्षा के निमित्त उसकी स्वाभाविक चपलता को सीमित करना आवश्यक है। बालक को किसी अवांछित काम से रोकने के लिए उसका कारण समझाना चाहिये कि क्यों उसे ऐसा करने से रोका जा रहा है। बालक को एकदम किसी काम को करने से मना करने तथा उसको समझाकर मना करने में बहुत बड़ा अन्तर है।

अनेक माता-पिता केवल बच्चे को रोकना ही अपना कर्तव्य समझते हैं और क्यों रोका जा रहा है, यह बतलाना अनुचित समझते हैं। दिनभर माता के मुँह से बालक यही सुनता है "यह मत कर।" "वहाँ मत जा।" "उसे मत छूना।" आदि-आदि। बालक की बुद्धि कली की तरह है जो शनैः शनैः खिलकर एक फूल के रूप में विकसित होती है। बुद्धि के पूर्ण विकास के लिये उसे यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि "उसे यह काम क्यों नहीं करना चाहिये? उसे वहाँ क्यों नहीं जाना चाहिये या अमुक वस्तुओं को क्यों नहीं छूना चाहिये?" हम तो अपने बच्चे से यह आशा करते हैं कि वह एक समझदार व्यक्ति की तरह बर्ताव करे, परन्तु उसे एक समझदार आदमी बनने में हम उसकी सहायता नहीं करते। हम अपने इस काम में सफल तभी हो सकते हैं जब हम अपने बच्चे पर पूर्ण विश्वास करें तथा उसमें ऐसी समझ उत्पन्न करें जो एक समझदार व्यक्ति में होती है।

बालक को यह सिखाना है कि वह किन-किन वस्तुओं को स्पर्श न करे। उसे यह बतला देना चाहिये कि वह अभी इतना बड़ा नहीं हुआ कि ऐसे काम कर सके या ऐसी वस्तुओं का उपयोग कर सके, जिसके लिये उसे मना किया जा रहा है। जैसे आग जलाना, चाकू से तरकारी आदि काटना, इत्यादि। बालक

अपनी बात पर डटा रहता है और यदि उसे वैसा नहीं करनेदि या जाय तो रोना-पीटना आरम्भ कर देता है। इसलिये यदि रसोई सम्बन्धी खिलौने दे दिये जायँ तो वह एकान्त स्थान में खिलौनों के द्वारा माँ का अनुकरण करता हुआ अपना मनोविनोद करता है। इस प्रकार वह आग से खेलने का हठ छोड़ देता है और अपनी नकली छुरी से माँ के पास बैठकर आलू कतरना सीखता है। एक स्फूर्ति-वान् तथा चतुर बालक संकट में उतना नहीं पड़ सकता जितना एक सुस्त एवं आलसी बालक। सुस्त और आलसी बार-बार मना किये जाने पर भी रसोई में घुसकर हाथ जला ले सकता है या चाकू से अपना हाथ काट ले सकता है।

कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि बच्चा जो माँगता है उसे वह दे देना, घूस देने के तुल्य है। क्योंकि ऐसा करने से वह कुछ समय के लिये प्रसन्न और शान्त हो जाता है, पर कुछ ही देर बाद दूसरी वस्तुओं के लिये हठ करने लगता है। यह तर्क खिलौनों के विषय में सत्य नहीं है, क्योंकि रसोई के खिलौने या नकली छूरी दे देना किसी प्रकार की घूस नहीं कही जा सकती। वास्तव में माता-पिता और बच्चों के बीच में जो लेन-देन होता है, वह घूस नहीं है।

यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे स्वभाव से ही उन्नतिशील हों, तो उक्त ढंग से व्यवहार करना ही होगा। यदि अपने बालक से बार-बार यह कहा जाय कि अमुक कार्य मत करो अथवा अमुक खेल मत खेलो तो अवश्य ही बच्चे का रोना-धोना सुनना पड़ेगा; क्योंकि जैसा ऊपर लिखा गया है कि उसकी ज्ञान-पिपासा चुपचाप रहने या उसकी तृप्ति के लिये कुछ न करने से शांत नहीं हो सकती। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि हमारे लिये जो साधारण खेल हैं वे ही बच्चों के लिये ज्ञान के भण्डार हैं; क्योंकि खेल के द्वारा ही बालक अपने समय का सदुपयोग करता है; साथ ही ज्ञान की वृद्धि भी।

यद्यपि खिलौनों से उसकी मानसिक तथा शारीरिक वृद्धि में बहुत बड़ी सहायता अवश्य मिलती है, तो भी केवल खिलौने ही पर्याप्त नहीं होंगे; क्योंकि उसकी उन्नति में वे पूर्ण रूप से सहायक नहीं हैं। इस विषय को आगे विशेष रूप से स्पष्ट किया जायेगा। जो बातें आपके बालक को नहीं करनी चाहिये, उनके विषय में उन्हें अच्छी तरह समझाकर उन पर अटल रहने के लिये माता-

पिता को बालकों को प्रेरित करना चाहिये। जो काम आज उनसे नहीं करने के लिये कहा जाता है उसी काम को कल करवाने की आज्ञा देना ठीक नहीं। ऐसा करने से वह इस परिणाम पर पहुँचेगा कि बार-बार हठ करने से उसका आग्रह स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसे धीरे-धीरे हठ करने की आदत पड़ जाती है। यह न उसके लिये ठीक है और न माता-पिता के लिये ही।

इसमें सन्देह नहीं कि अपनी बात पर अड़े रहना बड़ा कठिन है। यह तब और भी कठिन हो जाता है, जब हम थके होते हैं, किसी काम में व्यस्त रहते हैं या हमसे कोई मिलने आया हो। ऐसी परिस्थिति में हम या तो उसे मना करना उचित नहीं समझते या उसे अपनी इच्छा पूरी करने देते हैं। यदि वह आपके मना करने पर भी अब हठ कर रहा है और आप उसे दण्ड देने की धमकी दे रहे हैं, तो आपको दण्ड अवश्य देना चाहिये।

बालकों को दंड देना चाहिये या नहीं? यदि हाँ, तो प्रश्न उठता है कि दंड की मात्रा तथा प्रकार क्या होना चाहिये। इस विषय में भिन्न-भिन्न देशों के शिक्षा विशेषज्ञों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इस विषय को आगे स्पष्ट किया जायेगा। यहाँ पर केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि यदि आप दंड देने की धमकी देते हैं और दंड देना आवश्यक समझते हैं तो दंड अवश्य दीजिये; किन्तु वह अमानुषिक और अस्वाभाविक न हो।

घरों में बहुधा माता अपने बच्चे से कहती हैं "तू नहीं मानेगा तो मैं घर छोड़ कर चली जाऊँगी, या मैं तुझे योगी बाबा को दे दूँगी।" ऐसी धमकियों का भी बालक पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। बालक माँ की प्रत्येक बात पर विश्वास करता है और वह उसकी धमकी सुनकर अत्यन्त भयग्रस्त हो उठता है। उसके हृदय में भय सदा के लिए समा जाता है। ऐसा ही प्रभाव पुलिस के पास ले जाने, भूत से डराने तथा अन्य धमकियों का भी पड़ता है। अतएव बालकों के हित के लिए ऐसी धमकियाँ न देना ही समीचीन हैं।

अधिकांश दशा में यह पाया गया कि बच्चे पर मारने-पीटने या डराने-धमकाने का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। माता को मारने का तो नाम ही नहीं लेना चाहिए। बच्चा स्नेह तथा प्यार से या मीठी-मीठी बातों द्वारा समझा-

बुझा कर पूर्ण रूप से वश में किया जा सकता है और वह माता के प्रेम में ही अपने को सुरक्षित एवं संरक्षित समझता है। बालक का भी अधिकांश समय अपनी माँ के साथ ही व्यतीत होता है, इसलिए उन दोनों का परस्पर सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो जाता है। बालक माता के ही प्यार और देख रेख पर पूर्ण रूप से निर्भर है। माता का हृदय बच्चे के प्रति उदार होना चाहिए। यह बात ठीक नहीं कि एक क्षण में तो बड़े स्नेह-प्यार की बातें की जायँ और उसे हर तरह की स्वतंत्रता दी जाय, तथा दूसरे ही क्षण उसे झिड़कियाँ दी जायँ या उसे हर बात या काम पर रोका-टोका जाय।

माता को बच्चे के प्रति अपना व्यवहार एक-सा रखना चाहिए। माता और बच्चे में परस्पर बार-बार द्वन्द्व हुआ करते हैं। इसका कारण अधिक अंशों में माता की द्विविधा पूर्ण मानसिक वृत्ति ही है। कभी हम सारा दिन बच्चे के साथ ही उससे प्रसन्नतापूर्वक खेलने तथा बातें करने में लगाते हैं। उस दिन हमारा समय उसी की देख-रेख में जाता है। दूसरे दिन हमारा जी उससे भर जाता है, उसकी बात हमें पसन्द नहीं आती और हम उसके साथ रुखाई से बर्ताव करते हैं। पर बच्चा यही इच्छा रखता है कि उसके माता-पिता उसके साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा उन्होंने पिछले दिन किया था। किन्तु माता का कोरा एवं रूखा उत्तर मिलने पर एक द्वन्द्व-सा प्रारम्भ हो जाता है।

यह बात सत्य है कि हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम सारा दिन बच्चों के ही होकर रहें या हम में उन्हीं के साथ खेलने की धुन सवार रहे। हम यह भी नहीं चाहते कि बच्चा सारा दिन 'आवारा' बना रहे या अपनी ही मनमानी करता रहे। हमें इन दोनों बातों के बीच की बात ढूँढनी है और करनी है। वह बात यह है कि जब हम बालकों के साथ व्यवहार करें, हमें अपनी चित्त-वृत्ति पर नियंत्रण रखना चाहिए और हमें उनके प्रति अधीर भी नहीं होना चाहिए।

पाश्चात्य देश के एक शिक्षा विशेषज्ञ ने लिखा है "To be a good parent one needs to be something between a saint and a parent, with all the patience of the one and

cunningness of the other." अर्थात् अच्छे माता-पिता होने के लिए हमें एक संत और संरक्षक के मध्य मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। सन्त का धैर्य और माता-पिता की संशोधन शैली होनी चाहिए।

माता-पिता को बच्चों को झूठे आश्वासन नहीं देना चाहिए। जो पुरस्कार या वस्तु आप अपने बच्चे को देने का वचन दे चुके हैं, उसे अवश्य ही पूरा करना चाहिए। यदि आप समझते हैं कि आप वचन पूरा नहीं कर सकेंगे तो वचन मत दीजिए। बच्चों की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र होती है। वे सरलता से न किसी बात को भूल सकते हैं और न किसी के दोष को क्षमा कर सकते हैं। यदि आप अपना वचन पूरा नहीं करेंगे, तो आपके प्रति आपके बच्चे की वह श्रद्धा, भक्ति और स्नेह नहीं रहेगा जो वचन देने के पूर्व था। आपका बच्चा आपकी बातों पर कभी विश्वास नहीं करेगा और आपके अवगुण का अनुकरण कर स्वयं भी झूठी बातें करने तथा बनाने का आदी हो जायेगा। यदि आप अपने बच्चे से सच बोलते हैं, अपना वचन पूरा करते हैं तो आपका बच्चा भी आपकी आज्ञा मानेगा। आपसे सच्चाई की शिक्षा पाकर सच बोलेगा और सर्वदा सत्य के पथ पर चलेगा, जो आपके लिए और उसके लिए गौरव की बात होगी।

माता-पिता एक और भूल कर बैठते हैं। वे अपने नादान बच्चों को एक प्रौढ़ व्यक्ति समझ उनसे ऐसे वर्ताव की आशा करते हैं जैसे एक प्रौढ़ व्यक्ति से आशा की जा सकती है। बच्चे को बच्चा ही समझ कर उससे उतनी ही आशा करनी चाहिए, जितना कि उस अवस्था के बालकों से सम्भव हो। प्रौढ़ों जैसी बातें जब वह नहीं कर पाता तो उसे टोका जाता है, धमकाया जाता है, ताड़ना दी जाती है या पीटा जाता है। उसका प्रभाव उसके ऊपर बड़ा बुरा पड़ता है और उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

किसी घर में मेज और कुर्सियों को रँगा जा रहा था। घर के बच्चों की दृष्टि इस काम पर पड़ी। कुछ दिनों के उपरान्त बच्चों के हाथ जूते का काला पालिश लग गया। उन्होंने बढ़ई का अनुकरण करते हुए मेज में पालिश लगा दिया। उनके सारे हाथ काले हो गये। धोने का प्रयत्न किया, रंग नहीं गया। फिर अपने हाथ कपड़ों से मलने लगे। हाथ तो कुछ साफ हो गये पर कपड़े

काले हो गए। माता यह देख आग बबूला हो गई और लड़के को खूब मारने-पीटने लगी। यदि उस समय पिता जी न आ जाते तो बेचारे बच्चे पर न मालूम और कितनी मार पड़ती। पिताजी ने बच्चे को माता की मार से छुड़ाया। उसे पुचकारते-पुचकारते अलग ले गए। जब उसका सिसकना बन्द हो गया तो उसे प्यार से सारी बातें समझायीं। उसको बताया गया कि कुर्सी और मेज को रंगने का पालिश अलग होता है। वह सूखने पर हाथ या कपड़े पर नहीं लगता। वह ब्रश से लगाया जाता है। जूते का पॉलिश भी ब्रश से ही लगता है। इसका ब्रश दूसरे प्रकार का होता है और जिस रंग का जूता हो उसी रंग का पॉलिश उसमें किया जाता है। बच्चा सारी बातें समझ गया और उसने फिर ऐसा काम नहीं किया।

पिताजी की अलमारी में लाल, काले और सफेद बूट रखे थे। उसने उसी रङ्ग के ब्रश छाँट कर वैसे ही रङ्ग का पॉलिश उनमें कर दिया। कार्यालय से आने के उपरान्त जब पिता जी ने बच्चे के इस हस्त-कौशल को देखा, तो वे उसकी समझ और कार्य-दक्षता पर बड़े प्रसन्न हुए।

धमकाने और पीटने की अपेक्षा हमें बच्चे को समझाना चाहिए कि उसके ऐसा करने से कितनी क्षति हुई है। यदि वह इसे करने से पहले पूछ लेता तो ऐसा नहीं होता। बच्चा बड़ा चञ्चल होता है और बड़ी जल्दी सब बातें समझ जाता है और भविष्य में फिर कभी ऐसा काम नहीं करता जिससे उसे अपने मुँह की खानी पड़े।

अधिकांश बालक नटखट नहीं होते, वे चञ्चल होते हैं। उनसे चुपचाप नहीं बैठा जाता है। वे खेलना चाहते हैं। उनको किस समय, किस अवस्था में कैसे खेल देने चाहिये जिससे उनका समय प्रसन्नतापूर्वक कटे और वे शरारत न करें, यह बात माता-पिता के विचारने की है। यदि माता-पिता ने उनको उचित खेल-कूद में लगा दिया, तो वे कभी उनके विरुद्ध नहीं जावेंगे।

हमें बच्चों से प्रारम्भ में ऐसी आशा भी नहीं चाहिये कि वे हमें यह बता सकें कि उन्हें कब क्या भोजन करना चाहिये, किस मौसम में कौन से कपड़े पहनने चाहिये। इसी प्रकार बच्चे यह भी नहीं समझ पाते कि कौन सा उप-

हास या अट्टहास हानिकारक है और कौन नहीं। ये सब बातें उनकी समझ में तभी आ सकती हैं जब हम उन्हें सब बातें उनके कारणों सहित अच्छी तरह समझा सकें।

संकल्प (will) सम्बन्धी द्वन्द्वों से बालकों को बचाना चाहिये। छोटी सी बात का बतंगड़ नहीं बनाना चाहिये। यदि साधारण सी बातों पर रात दिन हमारा द्वन्द्व होता रहेगा तो हम दोनों बड़े परेशान हो जावेंगे और बच्चा इन लड़ाई-झगड़ों का इतना आदी हो जायगा कि वह नित्य ऐसे ही उपाय ढूँढ़ निकालेगा जिससे उसकी माँ उस पर रुष्ट हो। अनेक माता-पिता यह बड़ी भूल करते हैं कि अपने काम के बहाने अपने बच्चों के बोलने की ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं देते और उसको अपने आप पर ही छोड़ देते हैं। ऐसे बच्चे बड़े स्वतंत्र हो जाते हैं। यदि बच्चा बाहर ही खेलना चाहता है और आप उसे अन्दर खेलने को कह रहे हैं—लेकिन वह बार-बार कहने पर भी नहीं मानता तो उसे टोकना या धमकाना नहीं चाहिये। उसे घर के अन्दर किसी दूसरे आकर्षक काम करने के बहाने बुलाया जा सकता है। यदि खेल के बहाने नहीं तो दूसरे काम के लिये वह अवश्य अन्दर आवेगा।

बच्चे को उसका हठ पूरा करने देना यह हमारा ध्येय नहीं होना चाहिये। यदि हठ ठीक है तो उसे पूरा करने दीजिये अन्यथा उसे समझा-बुझाकर दूसरे काम में लगाना चाहिये। बालक धीरे-धीरे आपकी बातों को समझकर उनको अक्षरशः पालन करने लगेगा और इस प्रकार आज्ञाकारी बनने लगेगा।

अनेक पढ़े-लिखे लोग भी कभी-कभी आज्ञा पालन नहीं करते हैं और साधारण सी बात पर लड़ पड़ते हैं। छोटे-छोटे बच्चों का तो पूछना ही क्या है। उनके आज्ञा उल्लंघन करने पर आपको कड़ाई से काम तो लेना पड़ेगा किन्तु यह सब उदारता और क्षमता से होना चाहिये। बच्चा जब अच्छा काम करे, उसे शाबासी मिलनी चाहिये और यदि बुरा करे तो उसकी निन्दा की जानी चाहिये। यदि कभी भूल से बिना बात के आप उससे रुष्ट हुए हों या उसे बिना कारण धमकाया गया हो, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो; उसके सामने

निःसंकोच भाव से गलती स्वीकार कर लेनी चाहिये। इसके फलस्वरूप बालक भविष्य में महान् कर्त्तव्य परायण तथा आदर्श नागरिक बनेगा।

---

[२]

माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा होती है कि वे जो कुछ कहें उसका अक्षरशः पालन बालक करते रहें। बालक आज्ञाकारी बने तथा उनकी आज्ञा का पालन तत्काल होता रहे अन्यथा बालक की 'खैर' नहीं। माता-पिता कितने ही आधुनिक विचार के क्यों न हों; उन्होंने शिशु मनोविज्ञान सम्बन्धी कितनी ही आधुनिक पुस्तकें क्यों न पढ़ी हों, फिर भी वे इस बात पर डटे रहते हैं कि बालक तुरन्त उनकी आज्ञाओं का पालन करें। माता-पिता की आज्ञा से बढ़कर बालक के लिये और कोई बड़ी आज्ञा नहीं हो सकती। उनकी बुद्धिमत्ता के परे और किसी की बुद्धि नहीं हो सकती। ऐसे विचारों को वे बालकों के मस्तिष्क में केवल इसी वास्ते भरना चाहते हैं कि वे यदि ऐसा नहीं करेंगे तो बालकों के आगे उनकी दाल नहीं गलेगी। बालक उनका सम्मान नहीं करेंगे और उन्हें मूर्ख समझेंगे।

माता-पिता को यह भले ही अच्छा लगे कि उनका बालक एक सीखे हुये कुत्ते की तरह उनके पीछे चलता जावे। पर बालक के चरित्र के लिये अच्छा नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि बालक को आज्ञाकारी होना चाहिये तथा अपने बड़ों का सम्मान करना चाहिये क्योंकि वह ऐसा नहीं करेगा तो भविष्य में हठी, अभिमानी और धूर्त युवक बन जावेगा। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि शैशवावस्था में बालक को हर बात को जानने और सीखने के लिये दूसरे पर अवलम्बित रहना पड़ता है जब कि बड़े होने पर उसे अपने हित और अहित का विचार अपने ही निर्णय से करना पड़ता है।

बालक से अन्धों की तरह आज्ञा पालन करवाने की अपेक्षा यह कहकर आज्ञा पालन करवाने में श्रेय होगा कि संसार में सदाचार सम्बन्धी मूलतत्व हैं जिन्हें उन्हें पालन करना ही होगा। बालक के माता-पिता या उसके साथी जिनके

साथ उसका सम्बन्ध होता रहता है, भली भाँति जानते हैं कि उक्त नियम क्या हैं और किस तरह उनके अनुरूप व्यवहार करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि जब हम उन्हें आज्ञा देते हैं तो हमारी आज्ञायें यथा योग्य होनी चाहिये। हमें उक्त आज्ञायें युक्ति से देनी चाहिये और बालक को उसके पक्ष में तथा विपक्ष में बोलने का पूर्ण रूप से अधिकार देना चाहिये।

यह देखा गया है कि हमारी आज्ञाएँ बहुधा युक्तिशील नहीं होतीं। माता-पिता अपने बालकों को बोलने का अवकाश देते ही नहीं, जो बालक डरते-डरते उनसे कुछ कहने का साहस भी करता है तो उसे वे अपना भारी अपमान समझते हुए धमकाकर चुप कर देते हैं।

यद्यपि बालकों के वाद-विवाद से हमारा कुछ अपमान नहीं होता अपितु ऐसा करने से वह हमारा अधिक सम्मान करने लगता है। यदि उसे यह विश्वास हो जायगा कि हमारा कहना सर्वथा उचित है तो उसका वे शीघ्र ही पालन करेंगे। यह स्वाभाविक है कि किसी काम को करने से पहले हम लोग भी उस विषय में वाद-विवाद किया करते हैं और आगा पीछा सोच कर ही उस काम को करने में अग्रसर होते हैं। यही दशा बालकों की भी है। हम उनसे क्यों यह आशा करें कि वे हमारी बातों का मुख से निकलते ही पूर्ण रूप से पालन करेंगे। वे सुनेंगे, सोचेंगे, समझ में न आने पर पूछताछ करेंगे और तब आज्ञा का पालन करेंगे।

यदि हम आरम्भ से ही बालकों को युक्ति पूर्वक यथोचित मार्ग से ले जाने का प्रयत्न करें तो हम उसके आज्ञाकारी बनने में सहायक ही नहीं हो रहे हैं बल्कि उन्हें संगत या असंगत, उचित या अनुचित बातों को जानने की शिक्षा भी दे रहे हैं।

माता-पिता को बालकों से बड़े धैर्य से काम लेना चाहिये। ऐसे भी अवसर आते हैं, जब बालक को तुरन्त ही आज्ञा का पालन करना चाहिये। अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में या संकट से बचने के सम्बन्ध में जो आज्ञा दी जाती है, उसका तत्काल पालन होना चाहिये, ऐसी आज्ञाएँ दृढ़ स्वर से देनी चाहिये

जिन्हें सुनते ही बालक समझ जाय कि इसे अवश्य करना है। बार-बार आज्ञा देने से भी बालक बिगड़ जाते हैं। आज्ञा उसी समय देनी चाहिये जब जरूरी समझी जाय। बालक धीरे-धीरे यह समझ जाता है कि जो आज्ञा उसे दी जाती है, उसकी भलाई के लिये है और उनको उसे अवश्य पालन करना चाहिये। वह यह भी समझने लगता है कि माता-पिता जो बातें कहेंगे, उसकी भलाई के लिये कहेंगे चाहे बातें उसकी समझ के बाहर ही क्यों न हों फिर भी वह उनके आदेशानुसार चलने लगता है।

अनेक शिक्षा-विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि बालक से कोई बात आज्ञा के रूप में नहीं कही जाय, उसे परामर्श के रूप में बात समझाने से उसका पालन जल्दी से हो सकता है।

बालक को भले बुरे की पहचान बड़ी जल्दी आती है। संगत तथा असंगत बात को भी वह अच्छी तरह समझता है। यदि बातें उसे तर्क से अच्छी तरह समझा दी जायँ तो वह उनका पूर्ण रूप से पालन करेगा।

माता-पिता की यही इच्छा होनी चाहिये कि उनके बच्चे अन्धे होकर उनकी आज्ञाओं का पालन न करें। परन्तु वे संगत और असंगत आज्ञाओं को समझना सीखकर उनका पालन करें।

---

[३]

अनेक परिवारों में यह देखा गया है कि बालक दिन में अधिकांश समय माता के पास रहने से माता को अपने वश में कर लेते हैं। यहाँ तक कि उसे कुछ भी नहीं समझते। ऐसे परिवार में माताएँ यह कहती हुई सुनी गई हैं कि "यह बालक मेरे वश का नहीं रहा। मेरी बातें सुनता ही नहीं, पिता जी का घर में पैर पड़ा कि तुरन्त ठीक हुआ" इत्यादि। जब कभी बालक उद्दण्डता करता है तो माता उसे ऐसा ही कह कर धमकाती है, "देखो! अब पिता जी आते हैं। अब ठीक हो जाओगे।" पिता जी का नाम ऐसे घर में एक 'हाऊ' बना रहता है।

यदि रात-दिन पिता जी को दण्ड देना पड़े तो सम्भवतः वालक को पिता जी का घर आना ही अखरने लगे। पर ऐसा परिवार एक आदर्श परिवार नहीं कहा जा सकता। उस घर का वातावरण भी ठीक नहीं जहाँ वालक अपने माता या पिता पर अपना आधिपत्य जमा कर अपनी मनमानी करता है।

माता-पिता का उत्तरदायित्व अपनी सन्तति के प्रति वरावर है। वालक को माता तथा पिता दोनों को प्यार तथा आदर करना सिखाना चाहिये। इसके साथ माता-पिता को भी अपने वालक के शिक्षण तथा लालन-पालन सम्बन्धी वातों में एक मत होना चाहिए। वहुधा देखा गया है कि साधारण सी वात में भी माता-पिता एक दूसरे से सहमत नहीं होते और उनके बीच वाद-विवाद होता रहता है।

बालक की बुद्धि तीक्ष्ण होती है। वह एक अद्भुत दर्शक है। जो कुछ भी वह आज कल सीखता है, वह अपने से वड़ों को देखकर और उनका अनुकरण कर सीखता है। जब माता-पिता वातचीत करने वैठते हैं तव वह वहुत जल्दी समझ जाता है कि कौन उसके पक्ष में है और कौन विपक्ष में।

अनेक वालक इसमें अपना श्रेय समझते हैं कि उसके माता-पिता उसके विषय में परस्पर लड़-झगड़ रहे हैं और एक उसका पक्ष लेता है, उसके पास जाकर उसे प्यार करता है ताकि दूसरे को और बुरा लगे।

माता-पिता का यदि वालक के शिक्षण और लालन-पालन के सम्बन्ध में मतभेद है तो वालक के सामने उन्हें उसके सम्बन्ध में वाद-विवाद नहीं करना चाहिये। यदि वे एकमत नहीं हैं तो उनमें से एक को वालक का भार अपने हाथ में लेना चाहिये और दूसरा उसमें कुछ भी हस्तक्षेप न करे। माता-पिता का एकमत होना कोई आसान वात नहीं है। माता स्वभावतः वड़ी उदार तथा पिता कठोर होता है या कभी इसके विपरीत भी वात हो सकती है। पिता चाहते हों कि वालक तुरन्त आज्ञा का पालन करे जब कि माता वालक को लाड़-प्यार कर, खिला-पिलाकर और पुचकार कर अपने वश में करना चाहती है। ऐसी दशा में आपका वालक सुशासित नहीं हो सकता।

माता-पिता को एकान्त में वालक का स्वभाव देखते हुए उसके विषय में

अपनी एक सम्मति कर लेनी चाहिए। यदि वे अपना एक मत नहीं कर सकते तो उचित यह है कि अपनी समस्या को किसी तीसरे अनुभवी प्रौढ़ सज्जन के पास ले जाकर हल करें। आजकल प्रत्येक बड़े शहर में ऐसे शिशु-मनोविज्ञान-विशेषज्ञ या चिकित्सक या अध्यापक बहुत मिलते हैं जिन्होंने बालकों के चरित्र-निर्माण पर बड़ी खोज की है, उनकी सम्मति ऐसे माता-पिता के लिये लाभ-प्रद सिद्ध होगी।

बालक के आचरण और व्यवहार से सम्बन्धित जो वार्तालाप घर में हो, उसकी अनुपस्थिति में ही होना चाहिये क्योंकि जब वह वहाँ पर खड़ा है और बीच-बीच में अपनी टाँग अड़ाता है तब हम किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सकते।

बालक के बिगड़ने का उत्तरदायित्व माता पर ही नहीं है बल्कि पिता पर भी है। बालक के लिये कभी माता 'हाऊ' बनी रहती है, किन्तु जब पिता कार्यालय से घर आते समय उसके लिये कुछ मिठाई, खिलौना इत्यादि लेकर आते हैं तो वह प्रसन्न होकर पिता को देवतुल्य समझता है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी पिता बालक को। माता से लड़ा भी देते हैं। इसका प्रतिफल यह होता है कि बालक एक को प्यार की दृष्टि से देखता है और दूसरे से घृणा करने लगता है।

माता-पिता को बालकों के शिक्षण तथा लालन-पालन के सम्बन्ध में एक-मत होना बड़ा आवश्यक है। दण्ड या पुरस्कार जो भी देना है वह एकमत होकर देना चाहिये। सार यह है कि बालक के सामने ऐसी बातें न हों जिनके संबंध में माता-पिता में परस्पर विरोध हो। दोनों को एकमत होकर ही उसे साफ-साफ बता देना चाहिये कि यह करना है या नहीं। आरम्भ में यह कठिन प्रतीत होगा पर ऐसा करने से बालक का भविष्य उज्ज्वल और परिवार सुखी होगा।

---

[४]

एक नन्हा सा शिशु जो आज तक हर काम के लिये अपनी माता पर निर्भर रहता था, अब वह अवस्था-वृद्धि के कारण न केवल अनेक काम अपने आप ही

करने लगता है, किन्तु अपनी माता से भी स्वतंत्र होना चाहता है। माता अब भी उसे केवल असहाय ही नहीं समझती परन्तु वह उसे अपने पर पूर्ण रूप से अवलम्बित जानती है। उसे हम माता की अज्ञानता न कह कर उसका स्वार्थमय प्रेम कह सकते हैं। अनेक माता-पिता बच्चों को अपना काम आप करने में आपत्ति प्रकट करते हैं। यदि बच्चा पेड़ पर चढ़ने का प्रयत्न करता है या कैंची से कागज काटने लगता है तो उन्हें भय लगता है और वे अन्तः-करण से यही चाहते हैं कि उनका बच्चा ऐसा न करे। इस भय की भावना से प्रेरित होकर बच्चे के उन्नति-पथ में बाधा डालते हैं।

जब तक हम बच्चे को भिन्न वस्तुओं का निरीक्षण तथा परीक्षण करने क अवसर ही न देंगे तब तक वह कभी भी स्वावलम्बी न हो सकेगा। अतः जब वह अपने आप काम करने की इच्छा प्रकट करता है तब समझ लेना चाहिए कि वह थोड़ा-बहुत अपने-आप काम करने योग्य हो गया है। यथोचित स्वतंत्रता देने से यह देखा गया है कि तीन वर्ष का बालक भी कैसे चमत्कार के कार्य कर दिखाता है। उन्हीं वर्षों में वह अपने हाथों से तथा बुद्धि से काम लेना सीखता है और अपने माता पिता, सखा-साथियों तथा प्रकृति-निरीक्षण से अपना ज्ञान-भण्डार बढ़ाता है।

प्रायः देखा गया है कि ऐसे बालक जिनका लालन पालन दाइयों द्वारा होता है और जिन्हें खेलने के लिये ऐसे अलग कमरे दिये जाते हैं जिनमें कुछ खिलौने रख दिये गये हों उनकी शिक्षा इतनी सुन्दर नहीं होती है कि जितनी उन बालकों की जिनका पालन माता द्वारा होता है। घर के काम-काज से अवकाश न मिलने पर भी माताएँ अकेली होती हैं और जिनको दिन भर घर के काम-धन्धे से अवकाश ही नहीं मिलता, उनके बालकों को अपने हाथ-पाँव फैलाने और बुद्धि-विकास का अधिक अवकाश मिलता है। वह बालक भले ही अपनी माता के काम काज में बाधक हो किन्तु अपनी माता के साथ रहकर बहुत कुछ सीखता है।

बालक यही सोचता है कि वह माँ को हर काम में सहायता दे रहा है। वह घर में झाड़ू देना, मेज, कुर्सी, किताबों को पोछना, भोजन के छोटे-छोटे

वर्त्तनों को साफ करना, छोटे-छोटे कपड़े धोना और उन्हें सुखाना सब सीखता है। यहाँ तक कि चावल और दाल बीनने में भी माता की सहायता करता है।

जैसे ही बालक कुछ काम निपुणता से करने लगता है, उसको कोई निश्चित काम करने को देना चाहिये और उसको समझाते हुए कहना चाहिये कि इस काम के करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। उसे यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि हम उस पर विश्वास करते हैं। वह बड़ा प्रसन्न होकर अपना उत्तरदायित्व निभाने का प्रयत्न करेगा और धीरे-धीरे सफल होगा। उसकी अवस्था तथा रुचि के अनुसार ही उसे काम देना होगा। ऐसा काम नहीं देना चाहिये जिसकी ओर उसकी रुचि न हो और जिसे वह प्रयत्न करने पर भी न कर सके।

काम करवाने के बहाने बच्चे को कभी फुसलाना नहीं चाहिये। यदि उसने अच्छा काम किया है तो उसकी प्रशंसा करनी चाहिये और उसे अच्छा काम करने को प्रोत्साहित करना चाहिये। बच्चा को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि उसने अच्छा काम किया। अपने माता या पिता को अच्छी सहायता दी। ऐसे प्रोत्साहन के वाक्य सुनकर बालक फूला नहीं समाता और अच्छे से अच्छा काम करने को अग्रसर होता है।

बहुत से बालक स्वभाव से ही आलसी होते हैं। वे काम सीखने में बहुत पीछे रहते हैं और सीखने की इच्छा भी नहीं रखते। ऐसे बालकों में यदि पैतृक दुर्गुण नहीं आये हों तो उनकी शिथिलता का मुख्य कारण उनके माता-पिता तथा घर या घर का वातावरण हो सकता है। वातावरण से हमारा तात्पर्य ऐसे घरों से है जहाँ बालक को पूर्ण रूप से प्रत्येक कमरे में जाने की स्वतंत्रता नहीं है। वह किसी वस्तु को छू नहीं सकता, किसी वस्तु को उठा नहीं सकता और यहाँ तक कि माता-पिता से नियत समय के अतिरिक्त बोल भी नहीं सकता। ऐसा बालक जिसकी देख रेख के लिये एक दाई रक्खी गई है, जिसका प्रत्येक काम उसी के द्वारा किया जाता है, वही उसको भोजन कराती है, उसका बिस्तर बिछाती है, उसके कपड़े धोती है और उन्हें आलमारी में रखती है। ऐसे बालकों की न विचार-शक्ति ही बढ़ती है और न वे हाथ-पैर फैलाना ही जानते

हैं। इसका उनको आवश्यक अनुभव ही नहीं होता। ऐसा वातावरण जहाँ माता अकेली होने पर भी बच्चे को एक कोने में बन्द रखती है, उसके मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिये बाधक है।

माता के स्वभाव और प्रकृति का भी बालक के चरित्र पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो माता धैर्य से काम लेती है और बालक को अपना काम स्वयं करने का अवकाश देती है, उसके गलती करने पर उसे समझाती है वह उस माता की अपेक्षा अधिल सफल होती है जो अधीर है और जो बालक की गलती पर उसे धमकाती है और उसका काम अपने आप कर लेती है। बालक समझाने पर अपनी गलती का स्वयं संशोधन कर लेता है। उसे थोड़ा समझाने की आवश्यकता है। बालक को अपने कपड़े स्वयं पहनने देना चाहिये। वह अपनी भूल अपने आप समझकर धीरे-धीरे ठीक तरह से कपड़े तथा जूते पहनना सीख लेता है। यह निश्चित है कि आरम्भ में दाहिना जूता बाएँ और बाँया जूता दाहिने पैर में पहिनने के पश्चात् बालक धीरे-धीरे ठीक पैर में ठीक जूता पहनता है। ठीक तरह से कपड़े तथा जूते पहन लेने पर उसे बड़ी प्रसन्नता होती है।

बालक को बार-बार प्रोत्साहन देना चाहिये क्योंकि इसकी उसे बड़ी आवश्यकता होती है। चारों ओर उसे सब बड़े ही बड़े लोग दिखाई देते हैं। माता-पिता-भाई तो बड़े हैं ही किन्तु उसके लिये कमरा, मेज, कुर्सी और अल्मारी सभी बड़े और ऊँचे हैं—जिनकी बराबरी वह नहीं कर सकता और जिन तक पहुँचने में उसे बड़ा कठोर प्रयत्न करना पड़ता है। उसे सब अधिक बुद्धि वाले दिखाई देते हैं। वह अपनी और उनकी बुद्धि की तुलना तो नहीं करता पर यह अवश्य समझता है कि उससे उनकी बुद्धि अवश्य तीव्र है। ऐसी दशा में जहाँ उसे सभी लोग बड़े दिखाई देते हैं और सब अपने को बड़ा समझते हैं उनसे उसके प्रत्येक काम की आलोचना होने की सम्भावना है और गलती करने पर सारे घर के लोग हँसने लगते हैं "अरे गधे! यह क्या किया, तुझसे यह काम कभी नहीं होगा, मुझे इसे करने दे"—ऐसा कहकर झिड़कना सर्वथा अनुचित है। प्रोत्साहन देने की बड़ी आवश्यकता है। घर के लोगों को उसकी अवस्था का ध्यान होना चाहिये। उसे प्रोत्साहन देते हुए काम अच्छी

तरह करने को अग्रसर करना चाहिये। बालक का ठट्ठा कभी नहीं करना चाहिये न बात-बात पर उसकी गलतियों पर हँसना ही उचित है। ऐसा करने से बालक हतोत्साह हो जायगा और उसमें कुछ करने की क्षमता ही नहीं रहेगी। हँसने तथा ठट्ठा करने की अपेक्षा उसे प्यार से उसकी गल्ती समझाते हुये उसी के द्वारा वह काम ठीक करवा लेना चाहिये। बालक पौधों की तरह हैं। जैसे छोटे-छोटे पौधों को बढ़ने के लिये अच्छी भूमि, पानी, खाद और देख-रेख की आवश्यकता है उसी प्रकार बच्चों को भी अच्छे तथा शान्तिमय वातावरण की भी आवश्यकता है। क्योंकि अच्छे वातावरण में ही उनका मानसिक और शारीरिक विकास होना सम्भव है।

---

[५]

बालकों के विकास में खेलों का स्थान भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बाल-शिक्षा खेलों के ही द्वारा होता है। यदि बालकों को उचित ढंग से खेलने दिया जाय, उनकी रुचि के अनुसार खेलों की रचना कर उन्हें खेल में लगाया जाय तो इससे केवल उनके समय का ही सदुपयोग न होगा बल्कि इन खेलों के द्वारा उनकी बुद्धि का विकास भी होगा।

खेलने के लिये पर्याप्त तथा स्वच्छ स्थान चाहिये जहाँ वे निश्चिततापूर्वक बिना हस्तक्षेप के खेल सकें। खेलने की विविध सामग्री उसे देनी होगी। उसके साथ-साथ माता-पिता की सहानुभूति और बोधनशक्ति की उन्हें बड़ी आवश्यकता है।

बालक का अधिकांश समय खेलने के लिये सुरक्षित रखना होगा। बालक अपना अधिकांश समय घर के बाहर ही व्यतीत करना चाहता है। पेड़, पौधे, फल-फूल और विशेषकर उसे मिट्टी से बड़ा प्रेम है। वह मिट्टी खोदता है और मिट्टी के घर, पुल, किला बनाने में अपने को बड़ा सिद्धहस्त समझता है।

जो खेल बाहर नहीं खेले जाते उनके लिये घर के अन्दर ही एक साफ हवादार तथा सुन्दर स्थान खाली करना चाहिये, यह स्थान ऐसा हो जहाँ उसे

चलने, फिरने, दौड़ने, खेलने-कूदने की पूर्ण रूप से स्वतंत्रता हो। यदि स्थानाभाव के कारण हम उसे उचित स्थान नहीं दे सकें और कमरे के गन्दा होने के भय से अपने कमरे और बराण्डे में भी खेलने का अवसर न दे सकें तो उसे अपनी बुद्धि के विकास का अवसर ही न मिलेगा।

यह भी आवश्यक नहीं है कि उसे मूल्यवान खिलौने खरीद कर दिये जायँ। एक दो वर्ष का शिशु केवल इतने में ही प्रसन्न हो जाता है कि हम उसे कुछ खाली डिब्बे, लकड़ी का चम्मच तथा कुछ मिट्टी और पानी दे दें। वह मिट्टी खोदेगा, पानी मिलायेगा और मकान बनावेगा। खाली डिब्बों को पानी से भरेगा, फिर उन्हें खाली करेगा। इस क्रिया में उसे अपार आनन्द आता है। वह डिब्बों के ढक्कन खोलने और चढ़ाने में बहुत दिलचस्पी लेता है। लकड़ी से मिट्टी में छेद बना-बनाकर उनमें रेत या पानी भरकर उसका मन मारे प्रसन्नता के उछलने लगता है। ऐसी सस्ती चीजें प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को खेलने के लिये दे सकते हैं। बाहर बाग में किसी पेड़ की छाया में उसे मिट्टी, रेत, छोटे-छोटे बरतन तथा पानी दिया जा सकता है।

भाँति-भाँति के छोटे बड़े डिब्बे जो एक दूसरे के अन्दर चले जायँ और बन्द हो सकें, दिए जा सकते हैं। एक बड़े डिब्बे में छेद कर और कुछ गोलियाँ बन्द कर उसे देनी चाहिये। बच्चे को छिद्र में अँगुली या लकड़ी द्वारा गोलियाँ छेड़ने में बड़ा आनन्द आता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो वस्तु आप दें वह इतनी छोटी न हो कि मुँह में चली जाय क्योंकि बच्चे को चीजों को मुँह में डालने की बड़ी आदत रहती है। ऐसे सन्दूक जिनके दरवाजे वह सरलता से खोल और बन्द कर सके, लकड़ी की चम्मचें, दो-चार ढक्कन जिनको बजा सके, एक फ्रेम बटन चढ़ाने और खोलने के लिये अच्छी सामग्री है।

अवस्था के अनुसार उसके खेलने की सामग्री में परिवर्तन किया जाना चाहिये। ज्यों-ज्यों वह बड़ा हो जाता है उसे ऐसे-ऐसे खेल के खिलौने देने चाहिये जिनमें अधिक शक्ति और बुद्धि लगाने की आवश्यकता हो। तीन वर्ष की अवस्था में उसे पेंसिल और कागज देना चाहिये। इस समय वह चित्र

बनाने तथा लाइन खींचने का शौक रखता है। धीरे-धीरे उसे चाक या रंगीन खड़िया देनी चाहिये। अब वह ऐसी अवस्था में पहुँच गया है जब उसे बड़ी चीजें चाहिये जैसे बड़े-बड़े कागज, बड़ी पेंसिल या खड़िया जिससे वह बड़े-बड़े चित्र इत्यादि बना सके। उसका मन बड़ी-बड़ी लकीर खींचने को होता है। बच्चे को अपनी बुद्धि से ही काम लेना चाहिये। जब धीरे-धीरे उसका हाथ ठीक चलने लगता है अर्थात वह वस्तुओं के कुछ कुछ नमूने खींच लेता है, उसे ऐसे कोष्ठक इत्यादि बनाकर देने चाहिये जिनमें वह विभिन्न प्रकार के रंग लगा सके और हर एक रंग को इस प्रकार से पहिचान सके।

इस अवस्था में बालक कैंची चलाना भी आसानी से सीखता है। कागज काटकर उन्हें चिपकाने में उसे बड़ा आनन्द मिलता है। अनेक माता पिता बच्चे को कैंची देने के नाम से घबड़ाते हैं लेकिन उन्हें इसका पता ही नहीं कि उनका बालक कितना सावधान और चतुर है। पहले पहल उन्हें बड़ी कैंची जो कुन्द हो देनी चाहिये। उसे पकड़ना और उससे काटना सिखाना चाहिये। हमें उसे यह भी बताना चाहिये कि यदि कागज के बदले हाथ या और कोई चीज जो दो धारों के बीच आ जावेगी वह भी कट जावेगी। इसलिये उसे बड़ा सावधान होकर कागज काटना चाहिये और उसे हाथ में लेकर इधर उधर न दौड़ना चाहिये।

यदि आप समाचार पत्रों या मासिक पत्रों से चित्र काट कर उसे दे दें तो और भी अच्छा होगा। वह भी आपकी तरह बड़ी सरलता से चित्र काट कर चिपकावेगा। पहले पहल वह इस काम में कठिनाई अनुभव करेगा। लेकिन धीरे-धीरे अभ्यास करने से तस्वीरें ठीक कटेंगी और ठीक तरह से चिपकाई जा सकेंगी।

बालक में एक बात यह भी देखी गई है कि वह एक खेल को बार-बार करना चाहता है या अपने से बड़ों के कामों की नकल करने का प्रयत्न करता है। इसलिये इस प्रकार के खिलौने या खेलने के सामान जो ऐसा करने में सहायक हों, उसे देने चाहिये। ऐसे खिलौने छाँटे जा सकते हैं जैसे गुड़िया की चारपाई और बिस्तर, छोटे-छोटे चाय बनाने के बर्तन, रसोई बनाने के छोटे-छोटे

पक्के वर्तन, ऐसी गुड़िया जिसके कपड़े सरलता से पहिनाये या खोले जा सकें और जो नहलाई-धुलाई जा सके। ये चीजें बड़ी कीमती नहीं होनी चाहिए। खिलौने खरीदते समय इस बात का ध्यान रहे कि वे ऐसी धातु के बने हों जो वर्षों तक चल सकें। फटे रूमाल या पुरानी चादर, मेज के कपड़े के टुकड़े, एक छोटी परात और साबुन धुलाई सीखने के लिये दिया जा सकता है।

इस अवस्था में बालक को ऐसा खिलौना कभी न देना चाहिये जिसकी बनावट जटिल और जिसका समझना कठिन हो। खिलौने छाँटते समय इस बात का ध्यान रहे कि खिलौने सरल हों और बच्चा सरलता से उससे काम ले सके। बच्चे को उसकी अवस्था के अनुसार खिलौने देना चाहिये।

माता-पिता को चाहिये कि अपने बालक के खेल में निरर्थक हस्तक्षेप न करें। हस्तक्षेप केवल उसी दशा में करना चाहिये जब बालक कोई क्षति पूर्ण काम कर रहा हो या बार-बार कहने पर भी घर की सामग्री को बिगाड़ रहा हो। जब वह कोई बात समझ न सके या कोई खेल वह न खेल सकता हो तो वह स्वयं आपके पास दौड़ा हुआ आवेगा। इस दशा में आपको उसे केवल कठिनाई मात्र दूर करने में सहायता देनी चाहिये।

कभी-कभी माता-पिता कोई नवीन खेल की सामग्री लाकर बालक को देकर उसे अपने समझाने की भूल कर बैठते हैं। यह बालक के लिये हितकर नहीं है क्योंकि इससे बालक अपनी बुद्धि से काम लेना भूल जायगा और हर बात में माता-पिता का ही मुँह ताका करेगा। यदि प्रारम्भ में बालक गलती भी कर ले तो कोई बड़ी बात नहीं। वह धीरे-धीरे उसका ठीक उपयोग समझकर उसे ठीक काम में लाने लग जावेगा। जिस समय बालक नये-नये खिलौनों से खेलता है उस समय उसका सारा ध्यान उसी ओर लगा रहता है। उसे खाने पीने तक की सुध नहीं रहती। अपनी भूल अपने आप पकड़कर उसे बड़ी प्रसन्नता होती है और वह अपनी ही बुद्धि से उन्हीं खिलौनों से नई-नई चीजें बना लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक को खेलने की पूर्ण स्वतंत्रता देनी चाहिये। और स्वयं नित्य प्रति एक या आध घण्टे स्वयं बालक के साथ खेलना चाहिए। ऐसे समय में जब माता-पिता बालक के साथ खेलते हैं तब उन्हें स्वयं नन्हें बालक

समान ही अपने को समझ कर उससे खेलना चाहिये। वालक इससे वड़ा प्रसन्न होता है। वास्तव में वालक इससे वड़ा प्रसन्न रहता है कि कोई उसके साथ खेले और उसके हस्त-कौशल की प्रशंसा करे।

यदि वालक मिट्टी से खेलता है और भाँति-भाँति की शक्लें नहीं वना सकता है तो माता-पिता को उत्तेजित नहीं होना चाहिये। वालक अपने आप ही प्रारम्भ में मिट्टी की गोलियाँ वनाना सीखेगा, फिर उसे साँप की सूरत देगा और धीरे-धीरे वड़ी-वड़ी चीजें भी वना सकेगा।

माता-पिता को एक वात यह भी स्मरण रखने की है कि वालकों के प्रति सदा पूर्ण रूप से सहानुभूति प्रकट की जाय। मान लीजिये किसी ने आकर उसका गेंद छीन लिया या नौकर ने उसे भूल से कहीं रख दिया और वह रोते-रोते माता-पिता के पास आता है। ऐसी अवस्था में माता-पिता को हँसना नहीं चाहिये। उसके लिये गेंद वैसे ही वहुमूल्य पदार्थ है जैसे हमारे लिये घर की कोई कीमती वस्तु। किसी कीमती वस्तु के खो जाने से हमें जितना दुःख होगा उतना ही गेंद के खो जाने से उस वालक को होता है। ऐसी अवस्था में हमें वालक के साथ पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उसे ढूँढने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

वालकों को अपने खिलौनों की देख-रेख करना सीखना चाहिये। सोने से पहले प्रत्येक वालक को अपने खेल के स्थान को साफ-सुथरा वनाने का नियम वना लेना चाहिये और इस नियम का अक्षरशः पालन भी करना चाहिये। उसके कमरे में ऐसे सन्दूक हों जो आसानी से उठाये जा सकें। अलमारियाँ छोटी हों जो उनकी पहुँच की हों। माता-पिता को भी निरर्थक उसकी चीजें नहीं छूना चाहिये, न उसकी सम्मति लिये विना उन्हें निरर्थक इधर-उधर हटाना चाहिये।

६

वह दिन कितने हर्ष का होता है जव शिशु पहले-पहल वोलने लगता है। कोई शिशु जल्दी वोलना आरम्भ कर देता है और कोई देर में। यहाँ तक भी

देखा गया है कि अनेक शिशु दो वर्ष की अवस्था में ही अपनी तोतली भाषा में छोटे-छोटे टूटे-फूटे वाक्य बोलने लगते हैं और अनेक शिशु तीन वर्ष में भी एक-दो शब्द भी बड़ी कठिनाई से बोल सकते हैं। प्रत्येक बालक अपने समय में ही बोलना आरम्भ करेगा और उसको जल्दी बुलवाने के सब प्रयत्न निष्फल होंगे।

जब बालक बोलना आरम्भ कर देता है तब माता-पिता उसे समझने तथा शुद्ध बोलने में सहायता दे सकते हैं। शिशु से आरम्भ से ही धीरे-धीरे और साधारण शब्दों में बार-बार दुहराकर बोलना अच्छा होता है। वह बड़े ध्यान से सुनता है कि उससे क्या कहा जा रहा है। यद्यपि वह अभी बिलकुल कम समझता है लेकिन धीरे-धीरे वह कुछ शब्दों को बार-बार सुनकर याद कर लेता है और स्वयं भी उन्हें गुनगुनाने लगता है। सुनते-सुनते प्रत्येक वस्तु का नाम जानने लगता है और स्वयं भी बोलने का प्रयत्न करता है।

तीन वर्ष की अवस्था में बालक अनेक शब्द सीख लेता है। इस अवस्था में माता-पिता विशेषकर माता उसे बोलने में और आगे बढ़ा सकती है क्योंकि माता ही उसके साथ अधिक रहती है। इस अवस्था में यह भी देखा गया है कि अनेक बालक बोलने में बड़ी जल्दी उन्नति करते हैं और अनेक बिलकुल आगे नहीं बढ़ पाते। बच्चे की उन्नति करना और न करना उसकी संगति और उसके माता-पिता का उसके साथ बोलने पर निर्भर है।

वह बालक, जिसकी माता न अपने बच्चे की बात ठीक सुनती है और न ठीक उत्तर ही देती है, बोलने में बहुत कम तरक्की करता है। लेकिन वह बालक जिसकी माता बच्चे को प्रत्येक बात ध्यानपूर्वक सुनती है और उसके अशुद्ध उच्चारण को शुद्ध करते हुए उसे समझाती है, बोलने में बड़ी जल्दी उन्नति करता है।

अनेक माताएँ अपने बालक को नई-नई कहानी कहने, नयी-नयी बातें सुनाने से हिचकती हैं। उनकी सम्मति में बालक इन कहानियों को समझने में असमर्थ है। रोज-रोज नवीन शब्द, नवीन दृश्य, नई-नई कहानी तथा अन्य बातें सुनाने से ही बालक अपने शब्दकोष को बढ़ाता है और ज्ञान की वृद्धि करता है। नई-नई कहानी सुनकर उसे संसार के लोग, उनकी रीति तथा व्यवहार

का पता लगता है, जब तक हम उसे नवीन बातें नहीं सुनावेंगे तब तक उसका ज्ञान भण्डार सीमित रहेगा।

शहर के बालकों को गाँव के विषय में कहानी सुनानी चाहिये। ग्राम-निवासियों के खेत, खेती करना, हल चलाना, घास तथा फसल काटना; इत्यादि के विषय में बताते हुए उनकी तस्वीरें दिखलानी चाहिए। उसी प्रकार ग्रामीण बालकों को शहर के विषय में जानकारी करानी चाहिये।

जब बालक प्रश्न करना और जल्दी बोलना आरम्भ कर देता है तब हमें उसे नई-नई बातें सुनाने से नहीं रुकना चाहिये। यदि वह आरम्भ में न समझे तो भी बार-बार सुनाने तथा चित्र इत्यादि दिखाने से वह समझने लगेगा। उसके स्वयं प्रश्न पूछने से भी हमें मालूम हो सकता है कि वह कितना समझ सका है।

बाल-कविताएँ तथा बालगीत सुनाने से बालक को बोलने में और भी आसानी होती है। उनके बार-बार कहने तथा गाने से बालक भी उन्हें याद कर लेता है और पूरे वाक्य बोलने लगता है। ऐसे बालगीत छाँटने चाहिये जिनमें कोई भय दिखाने की बातें न हों। बालकों के मस्तिष्क में बुरी और डराने वाली बातें नहीं डालनी चाहिये। ऐसी कहानियाँ जिनका भूतों से सम्बन्ध है, नहीं सुनानी चाहिये।

ऐसी पुस्तकें जिनमें रंग-बिरंगे बड़े-बड़े चित्र बने रहते हैं, बालकों को दिखानी चाहिये। आजकल अच्छे बाल-साहित्य की कमी नहीं। किसी भी पुस्तक विक्रेता के यहाँ ऐसी अनेक चित्रों की पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं। बालक चित्रों को देख-कर स्वयं पूछने लगता है कि 'यह क्या है ?, यह क्या कर रहा है, यह ऐसा क्यों है ?'

ऐसी पुस्तकें जिनमें भयानक चित्र हों, कभी नहीं दिखानी चाहिये। इसी प्रकार सोने से पहले उसे ऐसे चित्रों को न दिखाना चाहिये जिनको वह अच्छी तरह न समझ सके और जिनका उसके ऊपर बुरा प्रभाव पड़े क्योंकि रात को उसके दिल में उसी का ध्यान बना रहेगा और वह भय से चिल्लाने लगेगा।

बालकों को कहानी सुनने का बड़ा शौक होता है। कहानियाँ मौलिक हों

और रोज एक नयी कहानी होनी चाहिये। प्रारम्भ में कहानियाँ छोटी-छोटी हों। उन्हें वार-वार दुहराया जाय। वातों को वार-वार दुहराने को बच्चा वहुत पसन्द करता है। वातें रोचक ढंग से कही जायँ तो अच्छा है। कहानियाँ घर, वाग, तोता, विल्ली, कुत्ता, वन्दर इत्यादि के सम्वन्ध की हों। कहानी का अन्त अच्छा हो। वच्चे को आरम्भ में लम्वी-चौड़ी कहानी जिसमें अनेक पात्र हों, अच्छी नहीं लगती, उसे तो सीधी-सादी कहानी चाहिये।

घरेलू कहानियाँ सुनाने से एक और लाभ है। उनके द्वारा हम उन्हें घर, परिवार और घर के पशुओं के विषय में सव वातें सिखा सकते हैं। और प्रत्येक कहानी के अन्त को ऐसा वना सकते हैं जिससे उसे कुछ शिक्षा मिल सके। उदाहरण स्वरूप एक गन्दे वालक की कहानी ही लीजिये। राम इधर-उधर खेलने में अपने को वड़ा मैला कर देता था। उसके हाथ, पाँव, मुँह, नाक में जहाँ देखो मिट्टी लगी रहती थी। जो भी उसको देखता उससे दूर रहने की कोशिश करता। एक दिन उसके अनेक साथी उसके साथ खेलने आये। जव उन्होंने राम को धूल और मिट्टी से लथपथ देखा तव वे ऐसे भागे कि लौटकर फिर वहाँ नहीं आये। वे यही समझते थे कि अगर राम उनको छू देगा तो वे भी वैसे ही गन्दे हो जायँगे। जव राम ने उनको भागते देखा तव वह झट से अपनी माता के पास गया और उससे उनके भागने का कारण पूछने लगा। माता ने उसे समझाते हुए कहा कि मैले, गन्दे लड़कों के साथ कोई भी नहीं खेलता। खेलना तो अलग रहा गन्दे लड़कों के साथ अच्छे लड़के मिलना-जुलना भी पसन्द नहीं करते। यह सुनकर राम वड़ा लज्जित हुआ। उसने माता से नहलाने के लिये आग्रह किया और भविष्य में साफ-सुथरा रहने की प्रतिज्ञा करने लगा। इस प्रकार वढ़ा-चढ़ाकर प्रश्न और उत्तर के रूप में हर कहानी को उसे सुनाना चाहिये।

वालक स्वयं ही प्रश्नों की झड़ी लगाता है, उसका वोलना ही प्रश्नों से आरम्भ होता है जैसे यह क्या है, वह क्या है। ऐसे प्रश्नों द्वारा वह अपना ज्ञान-भंडार भरता है और नवीन वस्तुओं के नाम भी सीखता है। दो वर्ष के वालक से माता साधारण चीजों के नाम पूछकर उसे घर की सव चीजों के नाम

याद करवा सकती है। यदि वह कभी भूल करता है तो उसे उसका ठीक नाम बताकर और आगे-पीछे उसका नाम पूछकर उसे उसका नाम अच्छी तरह याद करवा सकती है। इसी प्रकार माता और बालक के परस्पर प्रश्न के और उत्तर से बालक को धीरे-धीरे सब चीजों के नाम याद हो जाते हैं और वह कभी भूल नहीं करता है। यदि आपने उसे दावात को दावात बताया है तो वह उसे दावात ही समझेगा। यदि कभी आप उसकी बुद्धि जाँचने के बहाने दावात को शीशी कहेंगे तो वह आपकी भूल सुधार करते हुए कहेगा कि शीशी नहीं, दावात है।

माता घर का काम करते-करते भी बालक को बालगीत या बालकविता सुना सकती है। यदा-कदा कविता कहते-कहते उसका अन्तिम भाग छोड़ देना चाहिये। बालक सुनते ही उसे अपने आप पूरा करता है या कहानी सुनाते-सुनाते उससे बीच-बीच में प्रश्न करना चाहिये, जिससे यह ज्ञात हो सके कि उसकी समझ में कितना आया या इस प्रकार प्रश्न करना चाहिये कि तुम ही बताओ अब क्या होगा? इससे बालक अपनी बुद्धि के अनुसार उस कहानी को पूरा करने का प्रयत्न करता है। आपको यह पढ़कर आश्चर्य होगा कि ८० प्रतिशत बालक अधूरी कहानी को सुनकर उसका अन्त कैसा होगा उसका ठीक-ठीक अनुमान लगा सकते हैं।

आरम्भ में शिशु अपनी ही भाषा में बोलता है। उसको उसके माता-पिता ही समझ पाते हैं। धीरे-धीरे वही बातें वह स्पष्ट बोलने लगता है। किन्तु उसका उच्चारण ठीक नहीं कर पाता। ऐसी दशा में हमें उसे ठीक-ठीक उच्चारण कर उसके बोलने को अवश्य सुधारना चाहिये। अन्यथा भविष्य में उसका उच्चारण अशुद्ध ही रहेगा। बालक बहुधा नटखट प्रकृति के होते हैं। वे अपनी ही बात पर अड़े रहना पसन्द करते हैं। यदि माता उसे स्पष्ट कह दे कि उसका बोलना उसके समझ में बिलकुल नहीं आता तब बालक ठीक-ठीक उच्चारण करके बोलने लगेगा। कभी-कभी छोटे-छोटे शिशु दो या ढाई वर्ष की अवस्था के किसी शब्द के न जानने पर उसके लिये अपना नया शब्द खोज निकालते हैं। माता-पिता समझ नहीं पाते कि बच्चा आखिर माँगता क्या है लेकिन बच्चा अपना खोजा हुआ शब्द ही बोलता जाता है। माता-पिता को नवीन नाम सुनकर

बड़ा आनन्द होता है और वे बड़े प्रसन्न होते हैं। माता-पिता को चाहिये कि वे भी तुरन्त ही बालक को उस वस्तु का ठीक नाम बता दें।

अनेक बच्चे किसी शब्द का स्पष्ट उच्चारण नहीं कर पाते या किसी वाक्य को अधूरा ही कहते हैं। इससे घबड़ाने की कोई बात नहीं। बहुधा बड़े चञ्चल प्रकृति के बालक ऐसा करते हैं। वे बोलने के लिये इतने आतुर रहते हैं कि जल्दी में शब्दों को ही हड़प जाते हैं। बालकों को धीरे-धीरे बोलने के लिये कहना पर्याप्त होगा। यदि बालक वास्तव में हकलाता है तो उसे किसी डाक्टर को दिखाना चाहिये।

बालक अधिकतर बातें नकल करने से सीखते हैं। अपने माता-पिता की प्रत्येक बात की नकल करने में उसे अपार आनन्द मिलता है। इसलिये माता-पिता को चाहिये कि घर में बच्चों के सामने स्पष्ट तथा सुरीले शब्दों में बात-चीत करें। क्रोध न दिखाया जाय और कठोर शब्द भी न बोले जायँ। गाली तथा अपशब्द कभी अपने कंठ से न निकालें। बालक जो सुनता है वही बोलता है। एक बालक बँगले के ऐसे हाते में रहता था जहाँ अड़ोस-पड़ोस के गन्दे तथा अशिक्षित बालक आकर एक दो घण्टे जमघट लगाते थे। यह काम माता-पिता की अनुपस्थिति में होता था। माता-पिता काम पर चले जाते और घर में दाई के पास बालक रह जाता था। दाई जब सुख की नींद सो जाती तो बालक बड़े प्रेम से खिड़की में बैठकर इन शरारती बालकों की बातें सुनता जैसे 'वाह रे बेटा वाह' तथा 'पाजी, गधा, गधे का बच्चा' इत्यादि। उसको वे शब्द याद हो गये। माता-पिता के घर आने पर बालक ने उनके आने पर कहा— 'वाह रे बेटा वाह' इत्यादि। पिता यह सुनकर हैरान हो गये कि इतना छोटा बच्चा यह सब कैसे सीख गया! उन्होंने तो कभी ऐसे शब्द नहीं कहे थे। वे दाई पर सन्देह करने लगे। लेकिन बालक बात-बात में उन्हीं अपशब्दों को बोलता जाता था। यह समझाने पर भी कि इनका अर्थ बुरा होता है बालक नहीं माना। अन्त में पिता ने ऐसी युक्ति निकाली जिससे बालक चुटकियों में अपनी गल्ती समझ गया और उसने कभी ऐसे शब्द अपने मुँह से नहीं निकाले। पिता ने उसे गधा दिखाया और कहा कि इसका बच्चा भी इसी तरह का होता है। आदमी गधे का बच्चा नहीं हो सकता।

रविवार का दिन था माता-पिता काम पर नहीं गये थे। लड़कों की वही टोली फिर ऊधम मचाने आई और लड़के वही अपशब्द बकने लगे। तब माता-पिता को पता लगा कि उनका बच्चा ऐसे शब्दों को कैसे सीख गया। बच्चे जैसा देखते हैं वैसा ही करते हैं और जैसा सुनते हैं वैसा ही कहते हैं। इसलिये परिवार के लोगों को जिनसे उनका सम्बन्ध अधिक है, चाहिये कि वे ऐसे शब्दों को न बोलें जो घातक हों और ऐसा काम न करें जिसे बुरा समझा जाय।

लेकिन जब बालक ने यदा-कदा कोई अपशब्द सीख लिया है तब उसे समझा-बुझाकर ऐसे शब्दों को नहीं बोलने को कहना चाहिये। बहुधा बालक चिढ़ाने के लिये भी वही शब्द. माता-पिता के सामने बार-बार कहते हैं। ऐसी हालत में यदि बालक समझाने पर भी न माने तो उसकी बातों पर कुछ ध्यान ही नहीं देना चाहिये। जब बालक को पता लग जाता है कि न कोई उसकी बात सुनता ही है और न उसे धमकाया ही जा रहा है तब उसका बोलना उचित नहीं है और वह धीरे-धीरे उसका बोलना छोड़ देता है।

माता-पिता अपने बालक से कोई बालगीत, कविता या गाना अपने मित्रों को सुनाने को कहते हैं। बहुधा जब मित्र-मण्डली घर में मिलने आती है तब छोटे बालकों से उनका मनोरञ्जन किया जाता है, जैसे "अच्छा मुन्नी, अब गुड़िया रानी की कहानी सुनाओ।" हमें यह जानकर कि हमारा बच्चा इतनी छोटी अवस्था में इतनी बड़ी कविता याद कर चुका है--बड़ी प्रसन्नता होती है। पर हमें बच्चे के सामने उसकी प्रशंसा मित्र-मण्डली में नहीं करनी चाहिये। मित्र मण्डली को स्वयं उसकी कविता सुनकर उसे शाबाशी देनी चाहिये। भला कौन माता-पिता ऐसे होंगे जो अपने बालकों की बड़ाई न करें। परन्तु दूसरों से बड़ाई पाकर बालक को और भी प्रोत्साहन मिलता है।

---

[७]

बालक कभी ऐसे अपशब्द बोल देते हैं या ऐसे भाव प्रदर्शित करते हैं या ऐसे बुरे काम कर देते हैं जिनको सुन कर और देख कर हमें आश्चर्य होता है।

इन बुराइयों को दूर करने के पूर्व माता-पिता को अपने आपको टटोलना चाहिए कि कहीं बालक ने इन दुर्गुणों को उनसे ही तो नहीं सीखा है। इसलिए माता-पिता को बालकों के सामने अच्छा व्यवहार (Good Manners) प्रदर्शित करना चाहिए। बालक बाह्य समाज में ऐसा ही व्यवहार करते हैं जैसा कि अपने माता-पिता से करते हैं। इसलिए अपने बालकों से उसी तरह बोलना चाहिये जिस तरह बड़ों से। हमें उनसे वैसा ही वर्ताव करना चाहिये, उसी तरह आदर और सम्मान के भाव प्रदर्शित करने चाहिये जैसे हम बड़ों के साथ दिखाते हैं। यदि हम वास्तव में ऐसा करते हैं तो हम अपने बालकों के लिये एक आदर्श उदाहरण छोड़ रहे हैं।

'आदर्श' बोलने से भी अधिक प्रभावशाली होता है। एक बालक जो अपने माता-पिता को 'आप', 'जी', 'धन्यवाद' आदि कहते सुनेगा, उन्हीं शब्दों का प्रयोग बाहर भी करेगा। जिन बालकों ने आदर और सम्मान सूचक शब्दों को नहीं श्रवण किया है, वे उनका प्रयोग नहीं करेंगे।

उनके माता-पिता बालकों के प्रति सम्मान सूचक भाव प्रकट करने में अपना अपमान समझते हैं। बालकों को कभी-कभी यह सुनकर या देखकर आश्चर्य होता है कि उसके माता-पिता घर में एक प्रकार से वर्ताव करते हैं और बाहर दूसरा। माता-पिता को घर और बाहर एक सा व्यवहार करना चाहिए। घर में अनादर सूचक और बाहर आदर सूचक वाक्य नहीं कहे जाने चाहिये। अपने व्यवहार में भी हमें नम्र होना चाहिये। हमें अपने उदाहरण से बालक को यह सिखाना चाहिये कि चाहे कोई अमीर हों या गरीब, बड़े हों या छोटे, सबसे नम्रता से व्यवहार करना चाहिये।

माता-पिता को बालकों को आदर्श और नागरिक बनाना है, इसलिये बातें या कहानी कहते समय हमें उनके सामने उच्च और आदर्श विचार रखने चाहिये। स्वयं अपने दुर्गुणों को दूर कर उनके सामने नम्रता, सत्यता और प्रेम का आदर्श बन जाना चाहिए।

बालक अपनी ज्ञान-पिपासा, भांति-भांति के प्रश्न पूछ कर बुझाता है। वे

प्रश्न भले ही हमारे लिए कुछ महत्व न रखते हों पर वे बालक के ज्ञान-भंडार के लिए पत्थर की बुनियाद का काम देते हैं। बहुधा माता-पिता इन प्रश्नों से इतना तंग आ जाते हैं कि वे बालक को धमका कर चुप कर देते हैं। यह उनकी भारी भूल है। यह सत्य है कि बालक ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछता है जिनका उत्तर देना कभी कभी माता-पिता के लिए कठिन हो जाता है। लेकिन बालक को अपनी बुद्धि के अनुसार प्रश्नों का उत्तर देकर समझाना अधिक हितकर होगा। बालकों के प्रश्न जैसे 'यह क्या है ? कैसे हुआ ? क्या होगा ?' आदि का उत्तर हम देने में क्यों असमर्थ हो जाते हैं। इसका कारण यही है कि हमारा ज्ञान तथा बुद्धि सीमित है। हमने कभी 'उस पार' जाने का प्रयत्न ही नहीं किया और अब हम चाहते हैं कि हमारा बालक भी हमारे जैसा ही सुस्त (Dull) बने। बालक के प्रश्न हमसे ललकार कर कहते हैं कि पढ़ो, ढूँढ़ो, पूछो; जैसे भी हो इधर-उधर जाकर पता लगा कर मेरे प्रश्नों के उत्तर लाओ और मेरे ज्ञान-भंडार को बढ़ाओ।

---

[८]

अपने मनोभावों को अपने बालकों से छिपाना माता के लिए कठिन पाठ सीखने के तुल्य है। माता को दुःख के समय अपने भाव (Emotion) आविर्भाव (Expression) और कार्यों पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए। बालक पर बाह्य वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। सहानुभूति और सान्त्वना प्राप्त करने के लिए बालक माता ही की ओर देखता है।

छोटे से छोटा बालक भी अपनी माता की ओर देखकर यह पता लगा लेता है कि उसके कार्यों का माता के ऊपर कैसा असर पड़ा। बालक के रोने से माता दुखित और चिंतित होती है। माता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कभी-कभी बच्चा रोता ही रहता है क्योंकि उसे पता है कि उसके मामूली रोने पर भी माता उसके पास आकर उसे दुलारती है।

जब शिशु चलना सीखता है तब वह कई बार गिरता है। यदि उसके

गिरने पर माता बार-बार उसके पास जाकर उसे दुलारे, उसे मिठाई, बिस्कुट इत्यादि देकर चुप करे तो बालक भविष्य में भी मामूली गिरने पर खूब रोवेगा। ये असाधारण सी घटनाएँ हैं। अपने मनोभावों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण हम अपने बालक को सदा रोने वाला और मामूली बातों में सहानुभूति चाहने वाला बनाने में सहायक होंगे।

शिशु जन्म से ही भयभीत रहता है। जोर के शब्द, विचित्र आवाज या डरावनी सूरतें देखकर उसे भय लगता है। कोई अपरिचित व्यक्ति यदि उसे अच्छी तरह न पकड़े तो उसे गिरने का भय होता है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है, उसकी रक्षा की भावनाएँ दृढ़ होती रहती हैं क्योंकि वह अपने चारों ओर ऐसी सूरतें देखता है जो उसे प्यार करती हैं। उनके हाथों में वह अपने को सुरक्षित समझता है। इस अवस्था में यदि हम उसकी अच्छी तरह से देख-रेख कर सकें तो हम उसे सहनशील और निर्भीक बनाने में सहायता देंगे। बालक को इस बात की शिक्षा देनी चाहिये कि वह अपने नवीन वातावरण से भयभीत न हो।

बालक बहुधा अँधेरे से, आकाश में बादलों की गरज सुनकर, कुत्ते, घोड़े तथा अन्य पशु देख कर, अजीब आवाज सुन कर भयभीय होते हैं। यदि हम ध्यानपूर्वक सोचें तो बालक के इस भय का कारण हम अपने ही को पावेंगे। हमने ही कभी न कभी किसी तरह उसके मन में भय की बात डाल दी होगी तभी वह इतना भयभीत होता है।

यदि बालक शैशवावस्था से ही अँधेरे में सोता आ रहा है और उसे अकेले में रहने की आदत है तो उसे अन्धकार से भय न लगेगा। वह दिन और रात में यही भेद समझता है कि दिन में वह देख सकता है और रात में नहीं। यदि हम इतने मूर्ख और कठोर निकले कि कभी हमने उसे दण्ड देने के बहाने अँधेरी कोठरी या अल्मारी में बन्द कर दिया तो उसे अवश्य ही अँधेरे से भय लगेगा। भूतों या हाऊ की कहानी कहकर भी अँधेरे से उसे भय लगता है क्योंकि वह समझ लेता है कि भूत अँधेरे में ही रहते हैं। बालक को अँधेरे से भय लगने वाली बात, जैसे उस अँधियारे में चोर छिपे हैं, चारपाई के नीचे कोई छिपा है इत्यादि

न कहे। यदि बालक आरम्भ से ही अँधेरे में सोया है और उससे भय उत्पन्न करने वाली कोई कहानी नहीं कही गई है तो उसे अँधेरे से कभी भी नहीं डरना चाहिए। कभी-कभी धीमी रोशनी जो सोने के कमरे में रात को जलती छोड़ दी जाती है, दीवारों पर अनेक प्रकार के छाया-चित्र तथा प्रतिछाया पड़ने के कारण बालक के भय का कारण होती है। बालक एकाएक नींद से उठकर दीवार, छत या चारपाई के ऊपर ऐसी परछाईं देखते ही भय से चिल्ला उठता है।

बच्चे को यह पता नहीं कि वह अपने नवीन अनुभव से क्या उपदेश सीख सकता है। वह अपनी रक्षा या जानकारी के लिए माता की ओर ही देखता है। यदि माता ने उसका भय दूर करते हुए कहा कि अहा! कितना अच्छा कुत्ता है, कैसी सुन्दर गाय है, तो बच्चे को ढाढ़स होगा और उसका भय दूर भाग जायगा। यदि माता भी कुत्ते या गाय को देख कर डर गई हो तो उसे अपने बालक के भविष्य के लिए अपने डर को उससे छिपाना चाहिए अन्यथा बच्चा सर्वदा कुत्ते और पशुओं को देखकर भय करेगा।

हम अपने भयभीत स्वभाव का भले ही संशोधन न कर सकें पर बालक के सामने कुछ नियन्त्रण तो रख सकते हैं। यदि हमें स्वयं बादलों के गरजने से भय लगता है तो हमें चुपचाप कमरा छोड़ देना चाहिए न कि बालक के सामने अपना डर प्रदर्शित करना चाहिए। बालक यदि देखेगा कि गरजने से माता-पिता डर गये हैं, और सिकुड़ कर एक कोने में बैठे हैं तो वे भी उनका अनुकरण करने लगेंगे।

इस तरह छोटे-मोटे पशु तथा कीड़े-मकोड़े के विषय में भी बालक को भयभीत नहीं करना चाहिए। जो जन्तु जहरीले और जो पशु मारने वाले हैं उनसे बालक को अवश्य सचेत करना चाहिये। अनेक बालकों को डाक्टर और अस्पताल इत्यादि को देख कर बड़ा ही डर लगने लगता है। माता-पिता को चाहिए कि कभी सैर कराने के बहाने बालक को अस्पताल का निरीक्षण करावें। किसी अच्छे डाक्टर से परिचय कराकर उसका भय दूर करना चाहिए। जब बाल्य-

काल में बच्चे खेलते-कूदते गिर पड़ते हैं और उन्हें चोट लगती है तब प्रत्येक माता-पिता का चिन्तित होना स्वाभाविक है किन्तु हमें बाहर से इसको लक्षित न होने देना चाहिये। जितने ही धैर्य और शान्ति से हम काम लें, अच्छा है। बालक को धैर्य दिलाना चाहिए और उसे आश्वासन देना चाहिये कि वह ठीक हो जायगा। ऐसा करने से उसका भय चला जाता है और वह चुपचाप शान्ति और साहस से पीड़ा सहन करता है। यदि माता ने स्वयं रोना-पीटना आरम्भ कर दिया तो बालक का पूछना ही क्या है!

बालक के कभी रोगी हो जाने पर भी हमें चिन्तित नहीं होना चाहिए। बालक के सामने सर्वदा हमें हँसमुख रहकर उसे धीरज देना चाहिये। डाक्टर के बताए हुए उपायों का पूर्ण रूप से पालन करवाना चाहिये। इसी प्रकार यदि हमारे किसी आत्मीय की मृत्यु हुई हो तो बालक के सामने अपने दुःख तथा शोक को जितना भी हो छिपाने का प्रयत्न करना चाहिये। क्या ही अच्छा हो यदि इस अवस्था में हम उसके कोमल हृदय को 'मृत्यु' से विछोह का अनुभव ही न होने दें। यदि बार-बार समझाने पर भी उसके प्रश्नों की शृंखला नहीं टूटती तो उसे बताना चाहिये कि वह सो गया है लेकिन ऐसा सो गया है कि अब नहीं उठेगा। वह पवित्र लोक में चला गया है जहाँ उसकी विशेष माँग थी, इत्यादि।

एक विशेषज्ञ ने कहा है—

भय का अनुभव शिशु के लिए भयानक भाव है। यद्यपि इससे उसकी कुछ अंश में खतरे और दुष्टों से आत्म रक्षा हो सकती है, किन्तु इस भाव से उसकी स्वाभाविक वृद्धि में बाधा पड़ती है। शान्ति विश्वास और में ही शक्ति रहती है।

---

[६]

कुछ लोगों का यह मत है कि यदि परिवार में एक ही बच्चा हो तो उसकी उचित शिक्षा में अधिक लाड़-प्यार बाधक होता है किन्तु ऐसा सोचना उचित नहीं। क्योंकि तीन वर्ष तक बच्चा दूसरे बच्चों की संगति पसन्द तो करता है

पर उसकी रुचि व्यक्तिगत खेलों की ही ओर रहती है। वह एक दूसरे के साथ खेलता नहीं वरन् अपनी खिचड़ी अकेला ही पकाना चाहता है। एक कमरे में एक साथ रहने पर भी हर एक अलग-अलग खेल खेलता है। जब बालक चार वर्ष का हो जाता है तब उसे दूसरे साथी के साथ खेलने की इच्छा होती है। इस अवस्था में वह उसी अवस्था के बालकों के साथ जाना चाहता है। यदि उसके घर में और भाई-बहिन नहीं हैं तो माता-पिता अड़ोस-पड़ोस के साफ-सुथरे बालकों के साथ उसके खेल का प्रबन्ध कर दें। यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो उसे किसी अच्छे बाल-मन्दिर में भेज देना चाहिये।

अकेले या इकलौते बच्चों के लिये पालतू पशु भी साथी का काम देते हैं। कुत्ता सब पालतू पशुओं में अच्छा समझा जाता है। कुत्ते की देख-रेख का सारा भार उसी के ऊपर छोड़ना चाहिये। वह धीरे-धीरे उसका सारा काम करता है और यह सारा काम करने में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

एक ही बच्चा होने से माता-पिता उसे अधिक प्यार करते हैं। किन्तु अधिक प्यार से बालक अहंकारी बन जाता है। इसलिये माता-पिता को यह सुनहरा नियम याद रखना चाहिये कि किसी चीज की अति अच्छी नहीं।

जिन घरों में अनेक भाई और बहन होती हैं, वहाँ भाई-बहनों में या भाई-भाई में द्वेष-भाव उत्पन्न हो जाता है। आज तक माता-पिता उसे ही प्यार करते थे किन्तु अब यह देखकर कि घर में एक प्राणी और आ गया है जिसे माता रात-दिन गोद में लिये रहती है या जिसकी अधिक देख-रेख होती है, उसके दिल में चोट लगती है। नव शिशु के उत्पन्न होने के पहले हमें अपने बालक को उसके आगमन के लिये तैयार करना चाहिये। धीरे-धीरे उसे आने वाले साथी के विषय में कहा जाय। उसके कपड़े दिखाने चाहिये। उससे कहना चाहिये कि जिस प्रकार वह अपनी गुड़िया को सुलाता है उसी प्रकार नवजात शिशु (Baby) की देख-रेख करेगा। बेबी को चारपाई पर सुलाकर या दाई की गोद में बैठाकर उसे दिखाना चाहिये।

जब माता उसकी परिचर्या करती है तब बालक को समझाना चाहिये कि एक समय वह भी ऐसा ही छोटा था। उसको भी इसी प्रकार खिलाया-पिलाया

जाता था। माता अपने बच्चे से नवजात शिशु सम्बन्धी कुछ काम भी ले सकती है जैसे उसके कपड़े ठीक रखना, उसका बिस्तर ठीक रखना इत्यादि। ऐसा करने से लड़का द्वेष करने की अपेक्षा शिशु को प्यार करने लगेगा।

जो बालक द्वेष करता है वह अपनी माता के लिये बड़ा कष्टप्रद होता है। वह माता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अनेक रूप रचेगा जैसे रोवेगा, बार-बार बाहर चला जायेगा, घर की चीजों को इधर-उधर फेंकेगा ताकि माँ बच्चे के पास अधिक न बैठकर उसको प्यार करे। माता के लिए भी यह समय बहुत कठिन होता है। शान्त और सुखी होने के लिये उसे अपना प्यार दोनों को बराबर देना चाहिये।

जिस प्रकार बड़ा भाई छोटे शिशु के प्रति द्वेष करता है उसी प्रकार छोटा शिशु भी बड़े के प्रति करता है। जब वह देखता है कि उसे अनेक प्रकार की पाबन्दियाँ करनी पड़ रही हैं और उनके भाई जरा उससे स्वच्छन्द हैं तो वह उनके पास जाने और वैसी ही स्वच्छन्दता पाने के लिए आतुर रहता है, रोता-पीटता है। बच्चे को इसका पता ही नहीं कि एक दिन उसी तरह उसके बड़े भाई भी कैद थे। छोटे शिशु को इस पर भी दुःख होता है कि बड़ों के पास बड़े-बड़े खिलौने हैं और उसके पास छोटे-छोटे; बड़े भाई अपने साथियों के साथ बाहर जाते हैं और वह अन्दर ही रहता है। उसके इस द्वेष को दूर करने के लिये उसे भी बड़े खिलौने कम से कम छूने के लिये दे देना चाहिये। माता-पिता को उसे भी घूमने के लिये ले जाना चाहिये जिससे उसे पता लगने लगे कि उसके साथ दूसरे प्रकार का व्यवहार नहीं किया जाता।

छोटे शिशु को जैसा पहले लिखा गया है पूर्ण स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिये और बड़े भाइयों को न उसका मजाक उड़ाना चाहिये और न उससे नौकर का ही काम लेना चाहिये। प्रत्येक को अपना-अपना काम करना चाहिये। छोटे को इस बात की भी जिद न करनी चाहिये कि वह सदा बड़े भाइयों के साथ ही जाय, रहे, खेले, कूदे। बड़े भाइयों को भी अपने खेलों में मस्त न रहकर छोटे के साथ खेलने का भी समय निकालना चाहिये।

एक दूसरे की चीज पर भाई-बहिन लड़ पड़ते हैं। बिना एक दूसरे से पूछे चीजें न लेने की आदत डालनी चाहिये। जिन खिलौनों का कोई मालिक नहीं है उन्हें बन्द कर देना चाहिये ताकि व्यर्थ की झपट न हो।

बहुधा बड़े परिवार में मँझले बच्चे की परिस्थिति बड़ी शोचनीय होती है। वह न तो उतना बड़ा है कि बड़े भाई के साथ खेल सके और न तो उतना छोटा है कि छोटा भी उसका साथ दे सके। माता-पिता को उसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रत्येक बालक को मानसिक और शारीरिक वृद्धि का अवकाश देना चाहिये। बच्चों का मुकाबला उनके सामने नहीं करना चाहिये। बहुत से भाई इसी प्रकार उन्नति करने से रुक गये कि उनसे बार-बार कहा गया कि उनके भाई उनसे अच्छे हैं। उसने यह काम इतनी जल्दी सीख लिया किन्तु तेरे दिमाग में कूड़ा भरा है इत्यादि। इसके अतिरिक्त एक को अधिक प्यार और दूसरे को कम नहीं करना चाहिये। प्रत्येक बच्चे को एक सा प्यार करना चाहिये। एक सी सहानुभूति दर्शानी चाहिये और दोनों के साथ एकसा व्यवहार करना चाहिये।

---

[१०] अ

बालक माता-पिता, भाई-बहिन का ही अनुकरण करता है। यदि वे स्वार्थी, संकीर्ण विचारवाले, लोभी, ठग और कायर हैं तो उनके १० में ९ बालकों के भी ऐसे ही होने की सम्भावना है। हम ही उसके स्वभाव और चरित्र के निर्माणकर्त्ता हैं।

• प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चे के हित की बातें सोचते हैं और उसके लिये सब कुछ करने को तैयार रहते हैं, फिर भी यह देखने में आता है कि अनेक बालक स्वार्थी, धूर्त्त और प्रपंची बन बैठते हैं। इसका एक मात्र दोष माता-पिता को ही दिया जा सकता है। पिता को बाहर के कामों से इतना समय नहीं कि अपने बालक की देख-रेख के लिये अधिक समय दे सके और

माता घर के कामों में इतनी व्यस्त रहती है कि वालक को उसकी इच्छा पर छोड़ देती है।

यदि हम अपने स्वभाव और आचरण से वालक को आज्ञाकारी वना सके हों तो उसे निःस्वार्थ वना सकने में कुछ कठिनाई नहीं होगी। जब वह दूसरे वालकों के साथ खेलता है तब उसे हम खिलौनों के साथ खेलाते हुए यह शिक्षा दे सकते हैं कि खेल मिलकर खेलना चाहिए। 'यह मेरे खिलौने हैं, इससे वह कैसे खेल सकता हैं, यह भावना उनके दिल से निकाल दें तो अच्छा है।

वालक की वार-बार प्रशंसा उसी के सामने अन्य लोगों द्वारा कराने से बालक अभिमानी हो जाता है। ऐसा होना भविष्य में उसके लिए हानिकर सिद्ध होता है।

यह तो मानी हुई बात है कि हमें अपने बच्चों पर गर्व होता है और हमारे वालक कोई अद्भुत कार्य कर डालें तो हमें उनसे और भी अधिक प्रसन्नता होती है। बच्चों को प्रोत्साहन देना ठीक है लेकिन वार-बार जो मिला, जहाँ मिला उससे अपने बच्चों की प्रशंसा करना उचित नहीं समझा जाता।

अनेक बालकों में झूठ बोलने का स्वभाव हो जाता है। अनेक माता-पिता अपने वालकों को विना कारण मारते-पीटते हैं। इससे भी वालकों में झूठ बोलने का अभ्यास हो जाता है। वालक को दण्ड देते समय इसका निर्णय कर लेना चाहिये कि वालक ने यह जान-बूझकर किया है या उससे अज्ञान में ऐसा हुआ है। यदि अचानक विना उसके जाने-बूझे कोई चीज टूट गई है तो उसे दंड देना उचित नहीं है। यदि उसने जान-बूझकर चीज तोड़ डाली तो उसे भविष्य के लिए सावधान करते हुए धमकाना चाहिए और यह भली-भाँति समझा देना चाहिए कि उसके ऐसा करने से उन्हें कितनी हानि उठानी पड़ी।

बालक में अपनी गलती कबूल करने की आदत अवश्य पड़नी चाहिए। अपना दोष किसी के ऊपर मढ़ने से अच्छा परिणाम नहीं होगा। वालक बहुधा झूठ बोलना अपने बड़ों से ही सीखते हैं इसलिए बड़ों को बालकों के सामने सच बोलना चाहिए। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उनके सामने सच और

पीछे झूठ बोला करें। अपने बालकों को आदर्श बनाने के उद्देश्य से हम अपने दुर्गुणों को दूरकर अपने आप भी एक आदर्श नागरिक बन जावेंगे।

बालकों को अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा देनी चाहिए। अपने साथियों के साथ खेलने-कूदने में उनको कभी-कभी मुँह की खानी पड़ती है या साधारण चोट लग जाती है। जैसे खेल में गिर जाना। बालक खेल में गिर जाता है या उसे कोई डाँट देता है तब वह रोता और भागता माता के पास आता है। यदि कोई बालक उसे डाँटे तो उसे भी चाहिए कि वह उसे डाँटे और रोते-रोते माता के पास न आवे। यदि बालकों की क्रीड़ा में हस्तक्षेप न किया जाय तो वे अपना झगड़ा आप सुलझा लेते हैं। हमें अपने बच्चों को अपने सच्चे सिद्धान्तों के लिए खड़े होने की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें उदार, सभ्य और निर्भीक बनाना हमारा ध्येय होना चाहिए।

---

[१०] ब

शैशव और बाल्यावस्था में बालक को अधिक आराम और नींद की आवश्यकता होती है। इसलिए ५ वर्ष के एक बालक को १२—१४ घंटे तक सोना चाहिए। यदि यह समय लम्बा प्रतीत होता है तो याद रखना चाहिए कि इस समय बालक को अपने शरीर और बुद्धि से इतना काम लेना पड़ता है कि उसकी बहुत सी शारीरिक और मानसिक शक्ति नष्ट होती रहती है। उस शक्ति की वृद्धि तथा मन और शरीर के आराम के लिए उसे नींद की बड़ी आवश्यकता है।

बालकों में भीरुता तथा बीमारी से बचने की शक्ति की कमी, चिड़चिड़ापन इत्यादि कम सोने से ही होती है। जो बालक दुबले-पतले, तीक्ष्ण-बुद्धि और चंचल होते हैं उन्हें आराम और सोने की अधिक आवश्यकता होती है और जो बालक मोटा, आलसी और अल्पबुद्धि है उसे कम आराम की आवश्यकता होती है। बच्चों को दिन में भोजन के उपरान्त अवश्य विश्राम करना

चाहिए। बालकों के मनमानी करने पर भी उनमें जबरदस्ती विश्राम ले की आदत डालनी चाहिए।

इसी तरह हमें उसके नहलाने-धुलाने, खेलने-खाने-घूमने तथा सोने का समय निर्धारित करना चाहिए और उसका पूर्ण रूप से पालन कराते हुए उसमें प्रत्येक कार्य को नियत समय में करने की आदत डालनी चाहिए।

रात्रि में बच्चों के सोने से पहले उनके साथ कुछ समय प्रत्येक माता-पिता को बिताना चाहिए। माता-पिता के लिए चाहे कितना भी काम क्यों न हो किन्तु उनको थोड़ा समय बालकों के लिए अवश्य निकालना चाहिए। इससे दिन भर की थकान तथा उछल-कूद के बाद कोई दिलचस्प बात सुनते-सुनते बालक को सुख की नींद आ जाती है। इस समय कोई मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद कहानी बालक को सुनानी चाहिए। कोई भयावनी तथा धूर्तों की कहानी कभी नहीं कहनी चाहिए। सोने से पूर्व कहानी अवश्य पूर्ण हो जाय।

सोते समय बालक को रुलाना या धमकाना न चाहिए क्योंकि उनके स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। अनेक बालकों को अँधेरे कमरे में सोने से या अन्धकार से भय लगता है। यह स्वाभाविक है क्योंकि इसे उसने हमीं लोगों से सीखा होगा। ऐसी दशा में हमें उसे समझा-बुझाकर बता देना चाहिए कि अन्धकार में भय-भीत होने की कोई बात नहीं है।

———

शिशु और खेल

शिशु और खेल

एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि, "The discovery of the child has been widely acclaimed as one of the greatest of modern discoveries."

प्रकृति के आदि काल से ही बालक हमारे साथ है, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से ही उसको अच्छी तरह समझने के लिये, उसके चरित्र-चित्रण, स्वभाव और आवश्यकताओं का हम मनन करने लगे हैं। माध्यमिक काल में बालक 'बुरा' समझा जाता था लेकिन आधुनिक समय में उसे अच्छा समझा जाने लगा है। बालक न अच्छा ही है न बुरा ही। वह ऐसी प्रवृत्ति का बना है जिसका उचित निर्देशन होने से विकास हो सकता है। बालक जन्म के समय शक्यता के बंडल (Bundle of possibilities), के समान रहता है। माता-पिता, अध्यापक-अध्यापिकाएँ और पालकों के ऊपर बालक की स्वाभाविक शक्तियों को प्रकट करवाने का उत्तरदायित्व है।

बालक के जीवन पर घर और स्कूल का अधिक प्रभाव पड़ता है। अच्छा मनुष्य, अच्छे घर और अच्छे स्कूल का ही फल है। हमारे घर और स्कूल हमारे भावी समाज के द्योतक हैं। घर और स्कूल का स्वामी माता-पिता और अध्यापक नहीं, बालक है। बालक ही संसार में नूतन दिवस का संकेत (Symbol) है।

खेल-कूद बाल्यावस्था का एक विशेष गुण है। इसके द्वारा बालक स्वाभाविक रीति से अपनी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति करते हैं। इससे शरीर बलिष्ठ होता है और उनमें बुद्धि का विकास होता है।

यह एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो स्वाभाविक रीति से प्रकट होती है और सारे संसार में इसका रूप एक सा है। यह सत्य है कि खेल की अभिरुचि के क्रम में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। भाँति-भाँति के खेल एक दूसरे के बाद खेले जाते हैं; खेलते-खेलते पूर्णता को प्राप्त होते हैं। फिर वे लुप्त हो जाते हैं और

उनके स्थान में दूसरे खेल आरम्भ होते हैं। यह क्रमण (Sequence) सार्वत्रिक विकास से सम्बन्धित है।

यों तो सारे संसार में बालक एक से ही होते हैं चाहे वे किसी भी राष्ट्र के क्यों न हों। किन्तु कोई भी दो बालक एक समान खेल करते नहीं देखे गये। प्रायः बालक खेलों में अपना स्वभाव और प्रवृत्ति इस प्रकार प्रकट करता है कि उसका खेल व्यक्तिगत (Individually Characteristic and self-expressive) हो जाता है जिसके द्वारा वह आत्मप्रदर्शन करता है। बच्चों के खेलने की प्रवृत्ति को देखकर यह किस हद तक जाना जा सकता है कि बालक भविष्य में क्या बनेगा ? या खेल खेलने के समय से बालक ने किन सामाजिक तथा भावात्मक (Emotional) अनुभवों को प्राप्त किया, जिनसे उसे समाज का नेतृत्व करने, स्वतंत्र रूप से विचार और कार्य करने और सुखपूर्वक अपनी मित्र-मंडली में हिल-मिलकर रहने की आदत प्राप्त हुई हो ? या किन खेलों के द्वारा उसे भविष्य में किन उद्योग-धन्धों या व्यवसाय में जाने की अभिरुचि हुई ? इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों के उत्तर अभी मनोवैज्ञानिक पूर्ण रूप से नहीं दे पाये हैं। इसके लिये अभी अधिक खोज की आवश्यकता है। लेकिन यदि हम बालक की बाल्यकाल की आदतों और खेलों की ओर ध्यान दें और ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाय, उसकी अभिरुचि और चरित्र-चित्रण का मनन करें तो हमें यही पता लगेगा कि बालक का क्रीड़ा-जीवन ही उसके व्यक्तित्व के विकास, उसकी खेल सम्बन्धी अभिरुचि, उसकी योग्यता और उसके पूर्व अनुभव को बनाता है। यदि हममें लक्षणों के देखने और पहिचानने की बुद्धि हो तो हम बालक के खेल से उसके स्वभाव का पता लगा लेंगे।

खेल केवल उसके स्वभाव का ही सूचक नहीं है बल्कि इसके द्वारा उसके शारीरिक, मानसिक और भावात्मक उन्नति या ह्रास का भी पता लग सकता है। प्रत्येक शिशु-निकेतन की अध्यापिका का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपने बालकों के खेलों की अभिरुचि का मनन करें। उन्हें खेल खेलते देखें और जो कुछ वे करते जायँ वे उसको लिखती जायँ। इसके अतिरिक्त उन्हें चाहिये कि वह स्वयं भी उस खेल के विषय में पूर्ण रूप से अपनी जानकारी कर लें जिससे उनको पता

लग जाय कि कौन बालक खेल को किस तरह खेलता है और उसे कैसी सहायता कब देनी चाहिये। बार-बार खेलों के देखने से उन्हें यह भी पता लग जायगा कि कौन-कौन से खेल और सामान किस अवस्था के बालकों को देना उपयुक्त होगा।

खेल की आवश्यकता

खेल बाल्यावस्था में केवल मनोविनोद या मनोरंजन ही नहीं है बल्कि "It is the serious business of life." खेल-कूद को भोजन और पेय का एक अङ्ग ही समझना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा बालक शक्ति ग्रहण कर एक व्यक्तित्व धारण करता है। बालक खेल द्वारा अपने बढ़ते हुए शरीर को बलिष्ठ और सुन्दर बनाता है, अपनी मांस-पेशियों से चतुराई से काम लेते हुए उन्हें पुष्ट और बलिष्ठ बनाता है। इनके द्वारा ही वह अपनी मानसिक शक्तियों का विकास करता है। उसमें सोचने-विचारने और तर्क करने की शक्ति आती है। वह चीजों की तुलना और वैषम्य करना सीखता है। वह अपनी बुद्धि को वैचारिक उन्नति के काम में लगाना सीखता है। वह नई-नई बातों को सोचता, चीजों को देखता और किसी निदान पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। खेलों के द्वारा ही वह अपने भावों को प्रकट करना और उन पर नियंत्रण करना सीखता है। खेल ही उसे अपने चरित्र और स्वभाव को अच्छा बनाने में सहायता देते हैं। आत्म-नियन्त्रण, आत्म-निर्भरता तथा सहनशीलता के अभ्यास द्वारा वह दिन प्रति दिन अपने चरित्र को उज्ज्वल बनाता है। खेल "Affords education of the most complete kind for mind, body, character and personality". अर्थात् खेलों के द्वारा हमें मानसिक, शारीरिक, चरित्रनिर्माण सम्बन्धी तथा व्यक्तित्व की पूरी रूप से शिक्षा मिलती है।

एक बालक को खेलने के लिए स्थान नहीं देना या खेलने से मना करना या उसे खिलौनों से वंचित करना उसकी मानसिक उन्नति के लिए उसी प्रकार की रुकावट का काम करता है जिस प्रकार शरीर की वृद्धि के लिए एक बालक

को अन्न-जल से वंचित करना। खेलों से निषेध करना मानसिक पोषण के लिए हानिकारक है और बालक को बड़े होने पर जीवन के प्रत्येक काम के लिए असमर्थ बनाता है। शहरों में, जहाँ स्थानाभाव है, रहने से बालकों को खुले मैदानों में खेलने का अवसर नहीं मिलता। इसलिए ऐसे तरीकों को ढूँढ निकालना चाहिए जिससे उनकी शक्ति का ह्रास न हो। छोटे-छोटे मकानों में इतना स्थान नहीं जहाँ बालक को एक स्थान ऐसा दिया जा सके, जिसे वह अपना कह सके या जहाँ वह बहुत देर तक अपने आप खेल सके। बहुत कम बँगलों में खुले मैदान और बाग होते हैं। यह केवल गाँव की ही चीज रह गई है। गलियो या रास्ते जहाँ रात-दिन पशु, साइकिल, ताँगे और मोटर गाड़ियाँ दौड़ा करती हैं, खेलने के काम में नहीं लाए जा सकते हैं। प्रत्येक जिला-बोर्ड या म्यूनिसिपैलिटी को चाहिए कि प्रत्येक मुहल्ले में एक छोटा सा बाग या खेल का मैदान बनवा दे जिसके किनारे-किनारे छायादार वृक्ष, बीच में हरी घास तथा किनारे की क्यारियों में फूल हों। जिसमें बालकों को स्वतंत्र रूप से विचरण करने के लिये पर्याप्त स्थान हो और अनेक प्रकार के खेलों के साधन हों।

प्रारंभ के खेल

शिशु शैशवावस्था में अपने पैर और हाथ की अँगुलियों से ही खेलता है और धीरे-धीरे वह दूसरी चीजों को भी जोर से अपने एक या दोनों हाथों से पकड़ने लगता है। जो भी वस्तु हाथ में आती है उसे पकड़ लेता है और उसे ऊपर हवा में हिलाता है, जमीन पर पटकता है, चूसता है या जोर से फेंक देता है; चाहे वह कीमती घड़ी हो, झुनझुना हो या चम्मच हो या प्याला हो। उसे चीज से मतलब नहीं है। वह केवल उसे पकड़ना, हिलाना, चूसना और फेंकना ही अपना फर्ज समझता है। बालक के प्रारम्भिक खेल को कायिक खेल (Functional play) कहते हैं। इस खेल के कोई माने नहीं हैं। केवल इसके द्वारा शिशु अपने हाथ पैर खूब हिलाता-डुलाता है। जब खेल किसी मतलब को पूरा करने के लिए खेला जाता है तब वह खेल खेल नहीं रहता बल्कि वह

एक काम वन जाता है। यह वहुधा कहा जाता है कि वालक खेलते समय काम करते हैं और काम के समय खेल करते हैं—Children work when they play and play when they work. बच्चे काम करते हैं जव वे खेलते हैं और जव खेलते हैं तव काम करते हैं। शिशु जव वस्तु को पकड़ने लगता है तव उसमें काम की लगन आरम्भ होती है। वह वड़े चाव से उसे देखता है, फिर इधर-उधर रखने और उठाने में व्यस्त रहता है। जव वह दोनों हाथों से चीज एक साथ पकड़ने लगता है तव वह दोनों हाथों की अलग-अलग चीज की समानता करने लगता है। उसका वार-वार कभी इस हाथ में और कभी उस हाथ में देखना उसकी बुद्धि के विकास का सूत्रपात है।

खेलों के प्रकार

प्रारम्भ में शिशु के खेलों को तीन भागों में वाँटा जा सकता है—

(१) सक्रिय शारीरिक खेल (Active physical ptay.) जिनके द्वारा शिशु अपने शरीर के अङ्गों से काम लेना तथा उन पर नियन्त्रण करना सीखता है।

(२) खोज और हस्तोपयोगी खेल (Play concerned with exploration and manipulation) इसके द्वारा उसे वस्तु ज्ञान होता है और वह वस्तुओं से काम लेना सीखता है।

(३) विम्वात्मक या नाटकीय खेल (Imaginative or dramatic play) इनके द्वारा वालक की कल्पना शक्ति का विकास होता है।

सक्रिय खेल (Active play) के द्वारा वालक विना किसी ध्येय के हाथ पैर उछालता है, कूदता है, दौड़ता है, गिर पड़ता है और फिर उठ खड़ा हो जाता है। इस प्रकार के खेलों से वच्चा अपने शरीर के अंगों को पुष्ट वनने में सहायता देता है। मज्जातन्तु और मांसपेशियों के मध्य सहयंत्रण (Co-ordination) स्थापित करता है। जितना अधिक वालक उछल-कूद करेगा उतनी ही जल्दी वह वढ़ेगा। स्वस्थ वालक चुपचाप वैठने से थकान मालूम करते हैं और उछलने-कूदने से

नहीं। दो वर्ष के शिशु का खेल इसी प्रकार का होता है। वह ऊपर-नीचे चलने-फिरने दौड़ने और झूलने में ही अपना मनोरंजन करता है।

शारीरिक सहयंत्र और नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि किसी काम को वार-वार किया जाय जैसे भारी चीजों को वार-वार उठाना और रखना; ले जाना और लाना। जैसे-जैसे वालक को अपनी शक्ति पर भरोसा होने लगता है, वह और भी साहस के काम करने को आतुर होता है। ऐसी दशा में उसे प्रोत्साहन देने के लिए ठीक प्रकार के खिलौने देने चाहिए। खिलौने के साथ स्वतन्त्र रूप से खेलने में वालक को बड़ी प्रसन्नता होती है और स्वयं चीजों के वार-वार उठाने-रखने से उस कार्य में इतना सफल हो जाता है कि फिर उसे उसी काम के करने में न उतना कष्ट ही होता है और न उतनी शक्ति लगानी पड़ती है। शिशु-निकेतन में अध्यापिका को वालकों को ठीक ढङ्ग से उठना-वैठना सिखाने का अधिक मौका मिलता है। कुछ वालक अपने को स्वयं ठीक कर लेते हैं; किसी को वतलाने की आवश्यकता होती है।

क्रियात्मक खेल-कूद जहाँ तक हो सके खुले स्थान में होने चाहिएँ। खराव मौसम में अन्दर ही खेल खेलने को देना चाहिए। क्रियात्मक खेल जो अन्दर खेले जा सकते हैं, उनके कुछ सामान के नाम नीचे दिए जाते हैं—

१—ऊपर की रस्सी (Climbing Ropes)।
२—झूला (Rings to hang and Swing)।
३—रस्सी की सीढ़ी (Rope Ladder)।
४—चलने-फिरने वाले खिलौने (Run-about toys)।
५—घूमने वाला जंगल जिम (Monable Jungle Gym)।

वस्तु-ज्ञान के खेल

जैसे ही वालक चलने लगता है और स्वतंत्र रूप से फिरने लगता है, वह जिस वस्तु को पाता है, पकड़ता है, देखता है, चूसता है और जमीन पर पटकता है। वह यह मालूम करना चाहता है कि वह वस्तु क्या है। उससे क्या काम लिया जा सकता है। इस प्रकार का खेल वालक अपनी वाल्यावस्था
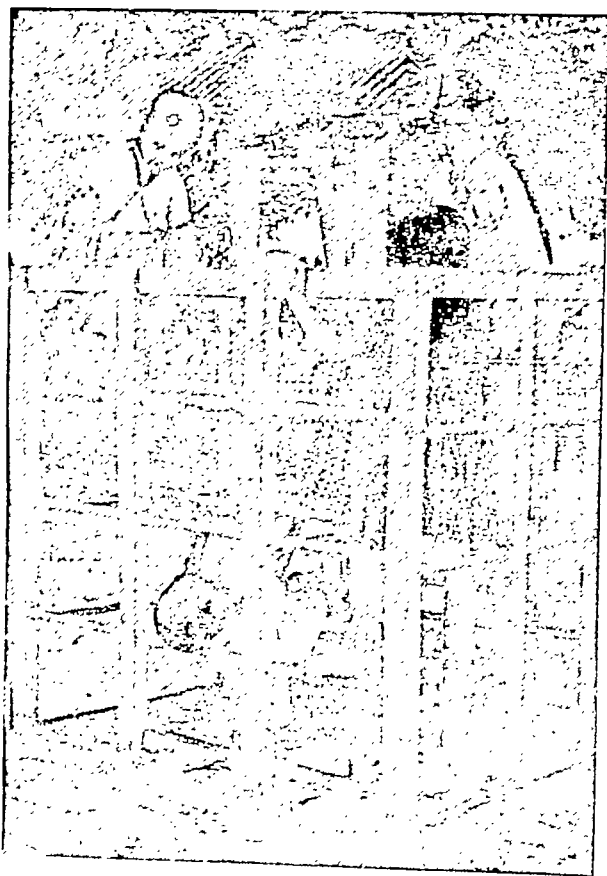
जंगल जिम (चढ़ना, उतरना)
इसमें बालक सरलता से सीखता है

[पृ० ११२]

में खेलता रहता है और नवीन वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की उसकी यही रीति है। जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ता जाता है वह उन वस्तुओं से अनेक प्रकार के काम लेता है। उसकी बुद्धि ज्यों-ज्यों विकसित होती जाती है, वह भाँति-भाँति के प्रश्न पूछकर अपनी इच्छा री करता है, जैसे यह क्या है ? यह कैसे हुआ ? इस अवस्था की विशेषता है कि कभी-कभी वह अपने-आप प्रश्नों का उत्तर देता है, तर्क करता है अर्थात् वह वस्तुओं की जड़ में पहुँचने का प्रयत्न करता है। ऐसे समय में यदि उसे निर्देशक वस्तु (Suggestive material) दी जाय तो उसकी बुद्धि का विकास बड़ी तीव्र गति से हो सकता है। भारतवर्ष का बालक जो अपने खेलों में बड़ी युक्ति से काम लेता है उसे ऐसी खेल की सामग्री देनी चाहिए जिससे वह भिन्न-भिन्न खेल खेल सके और भिन्न-भिन्न प्रयोग कर सके और उनसे भिन्न-भिन्न काम लेना सीखे। इस प्रकार की वस्तुओं से इन्द्रिय सम्वेदन (Sense perception) की शक्ति बढ़ती है। वह वस्तुओं की समानता तथा असमानता को मालूम करता है। इस प्रकार उसकी विचार-शक्ति बढ़ती है।

खेल और काम

जब बार-बार प्रयोग करने से बालक भाँति-भाँति की वस्तुओं से परिचित हो जाता है और उसमें निपुण हो जाता है तब वह उससे कुशलता से काम लेने लगता है। खेल करने से पूर्व वह विचार पूर्वक यह निर्णय कर लेता है कि वह क्या खेल करेगा और क्या बनावेगा। बाह्य वस्तुएँ या खेल के सामान उसे काम करने के लिए उत्सुक नहीं करते परन्तु वह अपनी विचार शक्ति से उनसे काम लेना सीखता है। यदि एक ही प्रकार की चीज भिन्न-भिन्न-वयस्क बालकों को दे दी जाय, तो वे उनसे अलग अलग काम लेंगे। बड़ी उम्र का बालक उसको बार-बार देखकर उससे प्रयोग कर यह अच्छी तरह समझ जायगा कि उसका क्या काम है और उससे फिर वही काम लेगा लेकिन छोटी उम्र का बालक यह सब नहीं कर सकता क्योंकि उसकी प्रयोग करने तथा विचार करने की शक्ति अभी बढ़ी नहीं है।

जब बालक खेलने लगता है या खिलौनों की सहायता से कोई चीज बनाने लगता है तब उसको बीच में नहीं रोकना चाहिये। जो काम उसने हाथ में लिया है, उसे पूरा करने का मौका देना चाहिये। जिस प्रकार हम यदि किसी जरूरी काम में लगे हों और कोई बीच में छेड़छाड़ करता है तो हमें बुरा लगता है उसी प्रकार बालक को भी खेलते समय रोकने से बुरा लगता है। इस प्रकार के खेलों द्वारा बालक में कार्य करने की क्षमता, चित्त के एकाग्र करने की शक्ति और ध्यान देकर सुनने या कार्य करने की शक्ति आती है। बीच में ही काम रोकने से या खेल बन्द करवा देने से बालक न चित्त ही एकाग्र कर सकता है और न किसी काम को ध्यान से करने की शक्ति ही उसमें आ सकती है।

बालक प्रत्येक वस्तु को दो बातों के लिये देखता है। एक तो वह उसको देखकर यह जानना चाहता है कि उससे क्या-क्या बन सकता है या नहीं और दूसरा यह कि वह उनका उपयोग करने में कुशल है या नहीं। जब तक वह दोनों बातें नहीं जानता तब तक वह पूर्ण रूप से उस सामग्री द्वारा अपने भाव प्रकट नहीं कर सकता। यदि किसी बालक को रंग का डब्बा और ब्रश दिया जाय तो सबसे पहले बालक ब्रश से सारे कागज को पोत देगा। धीरे-धीरे वह रेखा, गोलार्द्ध इत्यादि बनाकर अपनी चतुराई प्रकट करता है। यदि रेखा टेढ़ी-सीधी खींचते-खींचते कागज में किसी प्रकार की आकृति बन गई तब वह बहुत प्रसन्न होकर उसे दिखाते हुए कहता है 'यह अम्मा है या पत्ता है' इत्यादि। इस रेखा, विन्दु इत्यादि के बाद बालक जैसे-जैसे बोलता जाता है, बनाता जाता है। 'मैं सूरज बना रहा हूँ'। 'यह जहाज बनाया है'। कई महीनों के अभ्यास तथा बड़े होने पर वह काम आरम्भ करने से पूर्व कहता है 'मैं पेड़ बनाऊँगा मुझे हरा रंग चाहिए' इत्यादि। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है उसकी सृजनात्मक प्रवृत्ति (Creative Impulse) भी बढ़ती जाती है। ऐसे समय उसे खेलने की जितनी अधिक सामग्री दी जाय, उतना ही अच्छा है।

चीजों का बनाना

बालक में चीजों के निर्माण करने की बड़ी प्रबल इच्छा होती है। चीजों

आपका शिशु—

चित्रकारी और मिट्टी के खिलौनों में निमग्न बच्चे

[पृ० ११४]

पुष्प वाटिका की देख-रेख

[पृ० ११५]

निर्माण करना ही उनका एक प्रकार का खेल है। छोटी-छोटी ईंटों (लकड़ी की मिट्टी की) की सहायता से वालक सरलता से प्रयोजक खेल खेलता है। वह नकी सहायता से घर, पुल, वुर्ज, रेल, दीवार इत्यादि वनाता है। दो वर्ष से चि वर्ष तक के वालक के लिये यह वड़े मनोरञ्जन का खेल है। ऐसे खेल वालक कभी-कभी अकेले और वहुधा एक दूसरे की सहायता से खेलते हैं। मकान, पुल, वुर्ज इत्यादि वनाने से वालक का इन्द्रिय ज्ञान (Sensorial knowledge) वढ़ता है। जैसे चीजों का भारी या हलकापन, भारी और वड़ी वस्तु का वोझ सँभाल सकने की शक्ति इत्यादि। ऐसी अवस्था में वालक को ऐसे खेल के सामान देने चाहिये जिससे भाँति-भाँति की चीजें वनाई जा सकती हों तथा जो भिन्न-भिन्न वजन, वनावट और रंग के हों।

जव वालक सचमुच वस्तु निर्माण करना चाहता है तव उसे यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है जैसे छोटे-छोटे हथौड़े, किल्लियाँ, कीलें, लकड़ी और रंग इत्यादि। उसी तरह छोटे-छोटे फावड़े, खुर्पियाँ, कुदाली, हो (Hoe), फुवारे इत्यादि।

चार वर्ष के वालक दो वर्ष के वालकों की अपेक्षा स्वतंत्र होते हैं। यदि अध्यापिका उनके साथ खेलने में सहायता दे तो उनमें स्वभावतः खेलने की अधिक अभिरुचि उत्पन्न होती है। वे गीली मिट्टी से दुनिया भर की न मालूम किन-किन चीजों का निर्माण करने लग जाते हैं।

जैसे-जैसे वालक वड़े होते जाते हैं, उन्हें ऐसी सामग्री की आवश्यकता होती है, जिनसे अधिक से अधिक वस्तुएँ निर्मित हो सकती हों और जिनके निर्माण करने में उन्हें अपनी सारी वुद्धि लगानी पड़े। ४ वर्ष के वालक को साधारण ईंटों के अतिरिक्त वड़ी-छोटी, रंग, विरंगी ईंटें भी चाहिये ताकि वे अपने देखे हुए मकानों के नमूने वना सकें, जैसे-पूरी, आधी, लम्वी, गोल, अर्द्धगोल इत्यादि प्रकार के टुकड़ों से वे वड़े-वड़े भवनों का निर्माण करना सीखते हैं।

शिशु-निकेतन में वहुधा यह देखा गया है कि वड़े वालक लगन से खेलते नहीं। वे खेलों को अधूरा छोड़ देते हैं और इधर-उधर भागते फिरते हैं। ऐसे वालकों का मूल कारण उनके पिछले दो वर्षों का खेल-कूद ही हो सकता है अध्यापिका ने उन्हें अच्छी तरह नहीं खेलाया होगा। वीच ही में खेल वन्द कर

दिये हों और आप गपशप करने में लग गई हों या उन्हें ऐसे खिलौने और खेल की सामग्री दी गई हो जो उनके लिए पर्याप्त नहीं थी। बालकों का ध्यान पूर्ण रूप से आकर्षित करने के लिए भाँति-भाँति के खेलों का आविष्कार करना भी अध्यापिकाओं का कर्त्तव्य है। बालक ऐसे खिलौने चाहते हैं जैसा अभी बताया गया है कि जिनसे अधिक से अधिक वस्तुएँ निर्मित हो सकती हों और जिन्हें बनाने में उन्हें अपनी सारी बुद्धि लगानी पड़े।

बिंबात्मक और स्वैर काल्पनिक खेल

(Imaginatiue and Fantasy play)

बालक तीक्ष्ण बुद्धि होते हैं। वे क्षण में उत्तेजित हो उठते हैं और फिर शान्त हो जाते हैं। वह अपने मनोभावों को छिपा नहीं सकता। अपने हृदयोद्गार वह बड़े आवेग के साथ प्रकट करता है। कभी वह क्रुद्ध होता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी बड़े प्यार से बातें करता है। खेल-कूद में ही बालक अपने हृदयोद्गार क्रोध के आवेग में या कोमलता से, प्रेम से या प्यार से प्रकट करता है।

खेल में वह कभी अम्मा बनता है, कभी डैडी, कभी दायी, कभी नानी। इस प्रकार अपने घर की नकल वह खेल में करता है। लोगों की और चीजों की नकल करने और अपने पूर्व अनुभवों को खेल के रूप में व्यक्त करना एक प्रकार का खेल में याद करना है। जिन बातों का उसके दिल में अच्छा अनुभव हुआ, वही उसके खेल का विषय होता है। जैसे एक कलाकार चित्र बनाते समय अपनी स्मृति से पूरा-पूरा लाभ उठाता है उसी प्रकार एक बालक किसी की नकल करते समय अपनी स्मरण शक्ति से पूरा काम लेता है। जैसे अम्मा कैसे बैठती है? आग कैसे जलाई जाती है? उसके ऊपर बर्तन कैसे रखे जाते हैं? आटा कैसे गूँधा जाता है इत्यादि। ठीक इसी का अनुकरण खेलते समय बालक करता है। एक मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि—

A child went forth and the object that he looked

सामूहिक खेल

रेलगाड़ी का खेल

[पृ० ११७]

upon became part of him for the day, or a certain part of the day or for many years or stretching cycles of years. अर्थात् बालक ने जो देखा उसकी स्मृति उसे सारे जन्म भर बनी रहती है। नकल के खेल जो बालक खेलता है और जिनके द्वारा कभी कुछ और कभी कुछ बनता है, उसका बालक के आन्तरिक और बाह्य जीवन का सम्बन्ध प्रतीत होता है। खिलौने वही होंगे लेकिन भिन्न-भिन्न खेल खेलने की अभिलाषा अन्दर से ही आवेगी। अभी बालक रसोई का खेल खेलता है। थोड़ी देर में धोबी बनता है और फिर ड्राइवर बनकर कार चलाता है। अवस्थानुसार दृष्टिकोण बढ़ता है और वातावरण बढ़ाया जा सकता है। समान अवस्था के यदि भाई और बहिन साथ-साथ खेल रहे हों तो उनके खेल स्वभावतः भिन्न होंगे। बालक मोटर,रेल,पुल इत्यादि का खेल खेलेगा और बालिका गुड़िया के खेल खेलेगी।

अनेक लोगों का कहना है कि बाल्यकाल में शिशु जिस प्रकार के खेल खेलता है उसका स्वभाव भी वैसा ही बन जाता है और उसको जैसी आदत बाल्यकाल में पड़ जाती है वह आजन्म उसके साथ रहती है। इसलिए माता-पिता, अध्यापक-अध्यापिका और पालक का यह धर्म है कि वे बालक और बालिकाओं के सामने ऐसे आदर्श रखें जिनका वे केवल अनुकरण ही न करें बल्कि जीवन भर वैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

बहुधा बालक यह जानते हुए कि वह अभी छोटा है, साहसहीन है, खेल में बड़ा बनकर बहादुरी दिखाता है। गुड़िया को धमकाने से, भालू के कान खींचने से, घोड़े को चाबुक मारने से बालक अपने आन्तरिक भावों का प्रदर्शन करता है।

यदि बालक अपने खिलौने की देख-भाल ठीक तरह से नहीं करता, इधर-उधर फेंक देता है, तो उसे सावधान करने की आवश्यकता है। लेकिन यदि बालक उसे किसी खेल को खेलने के निमित्त काम में ला रहा है तो उसे धमकाना नहीं चाहिए जैसे गुड़ियों को पानी में फेकना अहितकर है लेकिन जब बालिका माँ बनकर गुड़िया को नहला रही है तो उसे मना नहीं करना

चाहिए। उसे इस प्रकार की गुड़िया देनी चाहिए जो पानी में डालने से खराब न हो।

जब बालक काल्पनिक या नकल के खेल करते हैं तब उनका सारा ध्यान उसी ओर लगा रहता है। वे जिसकी नकल करने लगते हैं उसके हाव-भाव, बोलने के ढंग, मुखाकृति की पूरी-पूरी नकल करते हैं। कुर्सी, मेज, पर्दे से घर, खिड़की और दरवाजे बनाए जाते हैं। कुर्सियाँ मिनट में मोटर का काम देती हैं और मिनट में घर का। बहुधा अध्यापक या बालक इस प्रकार के खेल बनाकर बालकों से खेलने को कहते हैं। ये उनके लिए रुचिकर नहीं होते। बालकों को अपने ही बनाए खेल पसन्द आते हैं, जिसे वे अपने ही तरीके से करना अच्छा समझते हैं। अध्यापिका यदि इस प्रकार के खेलों में भाग लेना चाहे तो ले सकती है पर अध्यापिका के नाते नहीं बल्कि अपने को छोटा बच्चा समझकर।

यदि बालक और अध्यापिकाओं ने दो और तीन वर्ष के बालकों के खेलों में कुछ कसर की हो तो बालक की भावात्मक और बौद्धिक शक्ति का विनाश होता जायगा। पाँच वर्ष की अवस्था या उसके लगभग उसका उत्साह काल्पनिक खेलों में कम हो जाता है और वह सत्य की खोज में निकल पड़ता है अर्थात् वह सचमुच की चीजें बनाने को उत्सुक रहता है।

बालक के खेल एक अनुक्रम से आरम्भ और समाप्त होते हैं। एक योग्य और अनुभवी अध्यापिका अपने बालकों की अवस्था और आवश्यकतानुसार खेलों को खिलाने से यह जान सकती है कि बालक या बालिका कुछ उन्नति भी कर रही है या नहीं? यदि बालक कुछ उन्नति नहीं करता है तो उसे ऐसे खिलौने देने चाहिए जिससे उसका मानसिक तथा शारीरिक विकास हो।

खेल की सामग्री

प्रकृति के वक्षःस्थल में बालकों के खेलने की अनेक सामग्री प्राकृतिक रूप से प्राप्त होती है। विस्तृत हरे-हरे मैदानों में, गगनचुम्बी वृक्षों की छाया में, स्वच्छन्द रूप से मिट्टी, रेत, ढेले, फूल-पत्र और लकड़ी के टुकड़ों से खेलते हुए जिन बालकों के दिन व्यतीत होते हैं वे उन बालकों से जिनको खेलने के लिये

स्थान और सामान पर्याप्त नहीं है, तीक्ष्ण बुद्धि होते हैं। जिन बालकों को प्राकृतिक वस्तु उपलब्ध नहीं होती उनकी यह कमी नकली खिलौनों से पूरी की जाती है। दो और तीन वर्ष के बच्चे रेत ही से अपना मनोरंजन करते हैं। रेत से अनेक चीजें बनाई जाती हैं और सीखी जाती हैं। रेत पर्याप्त मात्रा में एक बड़े गड्ढे में रखा जाय। वह इतना अधिक हो कि बालक उसे खोद सके, उसमें दौड़ सके, उससे पहाड़ बना सके। उसके समीप ही एक छोटी आलमारी हो, जिसमें छोटी-छोटी बाल्टियाँ, भद्दवे, वर्तन, थालियाँ और बड़ी तथा छोटी कटोरियाँ या साँचे हों, जिनमें रेत डालकर, रेत को भिन्न-भिन्न आकृति में ढाला जा सके। सामग्री ऐसी धातु की हो जिसमें जंग (Rust) न लगे, जो न टूटे और जिनके किनारे तेज न हों। बालकों का मनोरंजन भरने और खाली करने में ही अधिक रहता है। अनेक बालक रेत से खेलने के लिए सूप, छलनी, तराजू, कीप, बाँट-बट्टे और रस्सियाँ काम में लाते हैं। रेत के गड्ढे के पास ही पानी का होना भी आवश्यक है क्योंकि गीले रेत से साँचों में भाँति-भाँति की चीजें बनाने में सहायता मिलती है। बालक जल के प्रेमी होते हैं। पानी से खेलने में भी उन्हें बड़ा आनन्द मालूम होता है। ऐसे गड्ढे जिनमें कूदकर बालक पानी में थप-थप करें, उसमें उछल-कूद करें, बनाए जा सकते हैं। यदि स्थानाभाव हो तो छिछले वर्तन या टब में ही पानी भरकर रख दिया जाय और साथ ही साथ छोटे-छोटे लोटे, गिलास या मग, प्याले जिनसे वे पानी निकाल और भर सकें, उन्हें दिए जायँ। ऐसे बोतल जिनका मुँह पतला हो, कीप द्वारा पानी भरने को दिए जायँ। बालक इतनी सावधानी से पानी भरना सीखते हैं कि एक बूँद भी बाहर नहीं गिरने पाता। ऐसे बालक धीरे-धीरे भोजनालय में दूध, चाय, मट्ठा भी बड़ी सावधानी से प्यालों में डालते हैं।

खिलौना और खेलने की सामग्री चित्ताकर्षक हो और सरलता से बरतने योग्य हो। छोटा बालक स्वयं खेलने की शक्ति नहीं रखता लेकिन खेलने की सामग्री उसे खेल खेलने के लिए प्रोत्साहित करती है। वह सामग्री, जो सुन्दर है, रंग-विरंगी है, जिसको हाथ से पकड़ने और छूने से आनन्द मालूम होता है

उनसे खेलने में बालक को उन वस्तुओं की अपेक्षा अधिक प्रोत्साहन मिलता है जो टूटे हों, गन्दे हों और देखने में बुरे हों ।

शिशु की अँगुलियों में वेदन क्षमता होती है और उनके द्वारा उसे उपयोगी अनुभव प्राप्त होते हैं। चमड़े के मोटे होने से ७ से ६ वर्ष की अवस्था में वेदन-क्षमता लुप्त हो जाती है। बालकों को अपने खिलौनों और सामग्री की देखभाल करनी सिखानी चाहिये, जिससे वे साफ रहें और न टूटें। बालक सुन्दर वस्तु को प्यार करते हैं और उसकी सुन्दरता को नष्ट नहीं होने देते। टूटे, गन्दे और अदर्शनीय (बेहूदे) खिलौनों से बालक के हृदय में घृणा उत्पन्न होती है और वह उनकी देखभाल भी ठीक नहीं करता।

शिशु निकेतन के खिलौने मजबूत हों और आसानी से इधर-उधर हिलाये और उठाये जा सकें। धातु की सामग्री से लकड़ी की सामग्री अच्छी होती है। लेकिन इसका ध्यान रहे कि वे चिकने-चुपड़े (Well polished) हों और उनमें शरीर में घुसने वाली कोई चीज न हो। ऊँची-ऊँची आलमारियों की अपेक्षा छोटी-छोटी आलमारियाँ होनी चाहिये जिनको बालक स्वयं खोल और बन्द कर सकें तथा उसे साफ रखें। आलमारी के खाने ऐसे हों जो स्वयं ऊँचे या नीचे किये जा सकें। किसी समय ऐसे खिलौने या सामग्रियाँ आ जाती हैं जो बहुत ऊँची होती हैं जिससे उनके लिये अलग आलमारी की आवश्यकता न पड़े। आलमारी के खाने बहुत चौड़े न हों जिससे बालकों को अपने पसन्द की चीज खोजने में दूर तक हाथ न डालना पड़े। खिलौने तरतीब से कतारों में रक्खे जायँ जिससे वह पसन्द का खिलौना झट से निकाल सके।

दो वर्ष के बालक में पहिचान करने की शक्ति कम होती है। उनके लिये सामग्री पहले ही से अलग आलमारियों में रहनी चाहिये। प्रत्येक बालक को खेल समाप्त होने के उपरान्त अपनी सामग्री को नियत स्थान पर रखने की शिक्षा देनी चाहिये। भिन्न-भिन्न सामान भिन्न-भिन्न आलमारियों में हों जैसे मिट्टी के सामान अलग, खिलौने अलग और खोदने के यंत्र अलग, इत्यादि। लकड़ी के टुकड़े (ईंटें) थैलों में या बच्चों की छोटी गाड़ियों में रखने चाहिये जिससे वे आसानी से जहाँ चाहें ले जाये जा सकें।

तख्ते का झूला (सी-सॉ)

[पृ० १२१]
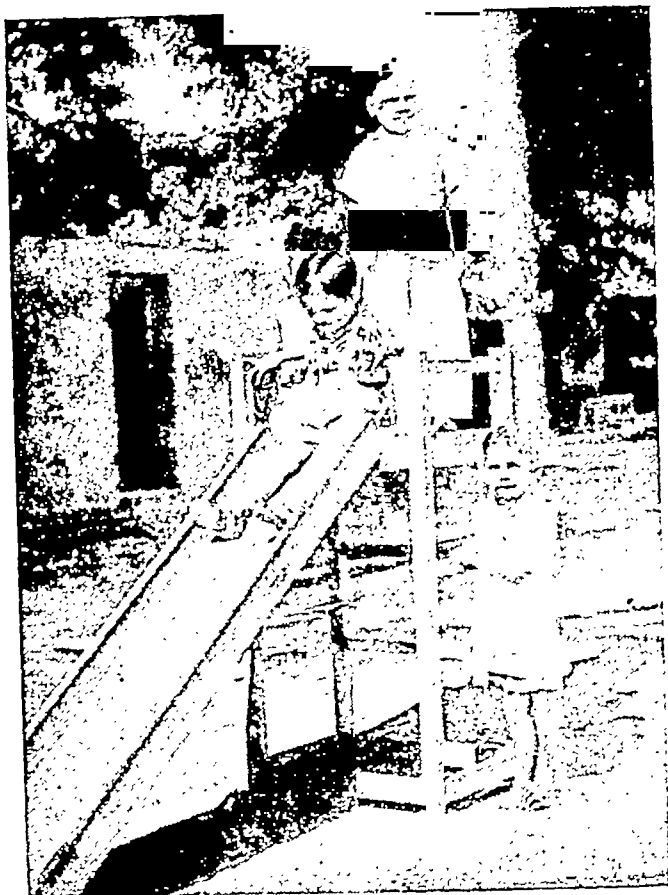
घिसनी (Slide)

शिशु-निकेतन में ऐसे छोटे छोटे मेज़ या आलमारियाँ हों जिनमें प्रदर्शन (Show) के लिये भी चीज, नमूने और खिलौने रखे जा सकें। बालकों का जन्म दिवस अवश्य मनाना चाहिये। एक आलमारी में ऐसे खिलौने रखें जो जन्म-दिवस मनाने के लिये उपयुक्त हों, जैसे-टी-सेट, चाय के बर्तन, छोटी कुर्सियाँ, मेज, सजाई हुई गुड़ियाँ और वे यंत्र द्वारा चलने वाले खिलौने जिनसे ऐसे अवसर पर अच्छा मनोरञ्जन हो सकता है।

प्रत्येक अवस्था के लिये सामग्री की सूची

निम्नलिखित सूची पूरी नहीं मानी जा सकती। वह केवल अध्यापिकाओं के लिये निर्देशन (Guide) मात्र है। खिलौने विभिन्न प्रकार के तथा अधिक संख्या में होने चाहिये, जिससे बालक आपस में झगड़ा तथा एक दूसरे के प्रति द्वेष न करें।

दो वर्ष के बालक के लिये

१—ऊपर चढ़ने के लिये चौखट जो मजबूती से दीवारों में लगाये जायँ। छोटी-छोटी सीढ़ी घिसनी सहित सीढ़ियाँ खोखले खाली सन्दूकों से भी बनाई जा सकती हैं। बड़ा सन्दूक सबसे नीचे, उससे छोटा उसके ऊपर इसी प्रकार और भी सन्दूक मजबूती से जकड़े जायँ। इनसे एक अच्छा चबूतरा बन जाता है जिस पर से बालक आसानी से कूदना सीखते हैं।

Balancing & Jumping--शरीर संतुलन और कूदने के लिए नौ इञ्च चौड़े तख्ते जमीन से दो या तीन इञ्च की ऊँचाई पर रखे जाँय।

Sea-saws—बड़े-बड़े गेंद, ऐसे पशु जिनमें पहिए लगे हों, गाड़ियाँ, मोटर, रेल, सन्दूक जिनमें पहिये लगे हों या बिना पहिए के जिनमें लम्बी रस्सी हो और गुड़ियों की गाड़ियाँ आदि, झूले जो बहुत नीचे हों और मजबूती से दरवाज़े में लटकाये गए हों। या एक गेंद जो ऊपर से लटकाया गया हो और बालक जिसको लेटे-लेटे पैर से ठोकर मार सके। छोटी-छोटी मोटरकार जिनमें बैठकर बालक अपना पाँव चलाना सीख सके।

२—ऐसे केनिस्टर और सन्दूक जो आसानी से खोले और बन्द किए जा सकें और जिनमें छोटी-छोटी वस्तुएँ रखी जा सकें। काँच की चीज नहीं होनी चाहिए। लकड़ी के ऐसे सामान न हों जिनके छिलके हाथ-पाँव में घुसें। टिन की सामग्री में जंग लगा नहीं होना चाहिए और उनके किनारे तेज न होने चाहिएँ। छोटे-छोटे ढेले, मटर, इमली की गुठलियाँ इत्यादि जिनको बालक आसानी से टिनों में भर और खाली कर सकें।

३—ईंट के टुकड़े १″ × २′ × २″ और ३″ × २′ × ½″। लकड़ी की रेल जो हुकों से जोड़ी या खोली जा सके और जिनमें पहिये न हों।

४—साधारण गुड्डे और गुड़ियाँ जो इतने बड़े हों कि लड़के आसानी से पकड़ सकें। रबर के खिलौने जो धोने से खराब न हों अच्छे होते हैं। उनको एक दो साधारण कपड़े पहिनाने चाहिएँ जिनको बाँधना न पड़े और आसानी से सिर या पैर से निकाले जा सकें। गुड़िया की गाड़ी, चारपाई और बिछौना।

५—रेत, बाल्टी, फड़वे, तसले, सांचे, विभिन्न कद (ऊँचाई) के खाली बरतन जिनमें रेत भरा जाय और खाली किया जाय।

६—तसवीरों की किताबें जो मजबूत कागज पर बनाई गई हों। तसवीर-पालतू पशु, बालक, मोटरकार, हवाई जहाज, आदमी तथा औरतों के हों जिनको बालक आसानी से समझ सकें। तस्वीरों के पोस्टकार्ड गत्ते में चिपकाकर प्रदर्शन-सन्दूकचियों में रखे जाँय।

७—Montessori-sense material—जिनके द्वारा बालक रंग, वज़न, आवाज़, नरम या कठोर (सख्त) का पता लगा सकें।

८—नमूने तथा तसवीर बनाने का सामान।

९—चिकनी गीली मिट्टी और Plasticine।

१०—खिलौने, रबर की गुड़ियाँ, नहाने का टब, घुमाने और ले जाने की गाड़ी, Tea-set, चारपाई, बिस्तरा, दूध पिलाने की शीशी, गुड़ियों के सीधे कपड़े, सन्दूक जिनमें सामान रखा जा सके।

११—खेल का घर—Playhouse, जिसमें प्रत्येक कमरे का सारा सामान हो।

१२—पहनने के कपड़े और कपड़े धोने के सामान, टोप, पुलिस, डाकिया, तारवाले चपरासी की वर्दी।

१३—कैंची, कागज। अखबार जिनमें बड़ी-बड़ी तसवीरें हों। गत्ता, गोंद, तागा, डोरी और गेंद आदि।

रंग के खेल—बालक रंग-बिरंगे चौक से भली-भाँति चित्र इत्यादि बनाकर मनोविनोद करता है। आजकल एक प्रकार का रंग जिसे Finger paint कहते हैं, निकला है। यह एक मुलायम द्रव-पदार्थ है जो कागज के ऊपर आसानी से फैलता है। उसके दाग भी आसानी से निकल सकते हैं और यह जहरीला भी नहीं होता है। यह अनेक रंग का होता है। इसके द्वारा बालक रंग मिश्रण और नवीन रंग बनाना भी सीखते हैं। इसी प्रकार Powder-paint भी मिलता है। कागजों को बोर्ड में चिपकाकर बालकों को ब्रश द्वारा रङ्ग लगाना सिखाया जा सकता है। रङ्गीन चौक क्रेयन इत्यादि भी चित्र विद्या सीखने में उपयोगी सिद्ध होते हैं।

खिलोने का परिमाण—Standards for toys—जो लोग खिलौने या खेल की सामग्री तैयार करते हैं उनके लिए कुछ परिमाण Standards बताये जाते हैं। खिलौने या सामग्री सरल हों, पक्की हों, बनावट ऐसी हो जिसे साफ करने में कठिनाई न हो और काम में लाने में उससे किसी प्रकार की हानि न हो और सरलता से इधर-उधर उठाया जा सकता हो।

पक्के खिलौने और सामग्री बहुत दिनों तक चलती है। और बालकों द्वारा बुरी तरह से प्रयोग में लाने पर भी टूटती नहीं। यदि टूट भी जाय तो सरलता से जीर्णोद्धार हो सकता है, और पुराना होने पर रङ्ग भी लगाया जा सकता है। जब बालक बड़ा हो जाता है वह सामग्री दूसरे छोटे बालकों के काम आ सकती है।

सामग्री ऐसी हो जो मैली होने पर धोयी या साफ की जा सके। सीधा सादा २ मान Crude material बालक को खेलने का अधिक अवसर देता है

किन्तु विस्तारित, संकीर्ण और कीमती नहीं, जैसे सन्दूकचियाँ, छोटे-छोटे टिन के डब्बे, लकड़ी या छड़ी, रेत, मिट्टी के ढेले आदि से बालक अधिक काम लेता है।

ऐसी सामग्री जिनका रंग जल्दी निकलता हो या जिनके किनारे तेज़ हों या जिनसे कपड़े या हाथ पैर कटने का भय हो, नहीं लेने चाहिएँ।

घर में बनायी जानेवाली सामग्री

बहुत से सामान और खिलौने घर में ही बनाए जा सकते हैं। उनको बनाने में व्यय भी कम होता है। और उनको बनाने में घर के अन्य लोगों का समय अच्छी तरह व्यतीत होता है। बड़े भाई, बहिन, माँ-बाप, चाचा चाची और नाना-नानी इत्यादि बच्चों के खेलों में अभिरुचि दिखाते हैं। खेल की सामग्री बना देते हैं इससे बालक भी चीजों का बनाना आरम्भ से सीखता है।

एक छोटा मेज—मेज चित्र बनाने, प्रदर्शन के लिये, चायपार्टी इत्यादि के लिए चाहिए जो २४″ × २४″ × २०″ नाप की हो।
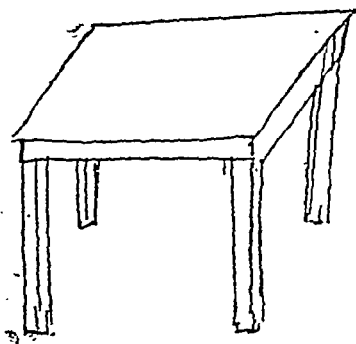
आलमारी—यह सन्दूकों या Crates खाली खोखों से आसानी से बन सकती है।
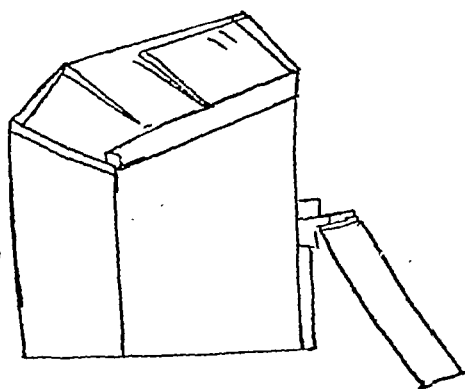
चौखट—नोटिस बोर्ड या पर्दा—लकड़ी के चौखट के बीच गत्ता लगाने से एक नोटिस बोर्ड बन सकता है जिसमें बालक चित्र इत्यादि चिपका सकता है।
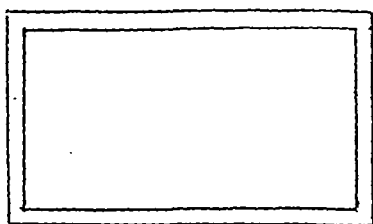
कुर्सी और स्टूल—दोनों सन्दूकों द्वारा एक अच्छी कुर्सी बनायी जा सकती है। सन्दूक का एक बड़ा भाग स्टूल का काम दे सकता है, जिसके ऊपर गद्दे इत्यादि भी लगाए जा सकते हैं और उसके ढँकने से किनारे और बीच का भाग भी बनाया जा सकता है। सन्दूक, पुरानी टोकरी को रंग लगाने सामान रखने के काम आ सकती है।
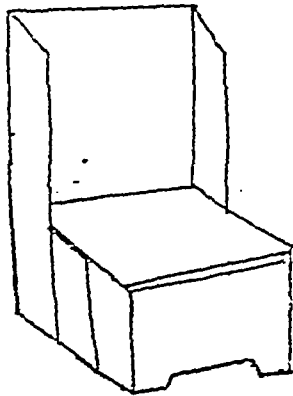
झूला—सर्वोत्तम झूला २४′ × २४′ होना चाहिए। उसको चार मजबूत रस्सियों से चारों शिराओं के छेद के नीचे गाँठ देने से पक्का बनाया जा सकता है। इस प्रकार गाँठ देने से तख्ता हिलता नहीं और बालक उसमें बैठ, सो और खड़ा हो सकता है। मोटर के पुराने टायर को १′ मोटी रस्सी से बाँध और लटकाकर भी अच्छा झूला बन सकता है।
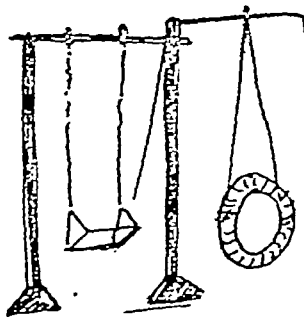
ऊपर चढ़ने का घोड़ा—विभिन्न प्रकार के बड़े छोटे खाली सन्दूक और एक साधारण तख्ते से सीढ़ी सहित एक ऊँचा चबूतरा बनाया जा सकता है। इन्हीं सन्दूकों के द्वारा गाड़ीघर और मोटर घर आदि बनाए जा सकते हैं।
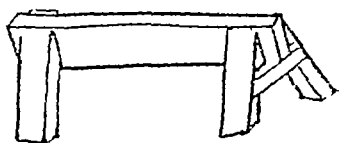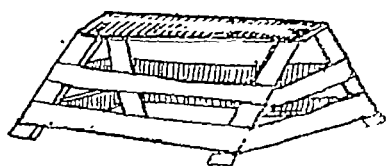
Saw horse जो सन्दूक के पुराने छोटे तख्तों को अलग-अलग कर फिर मिलाने से बनाया जा सकता है। इससे बालक चढ़ने उतरने का अभ्यास कर सकते हैं।
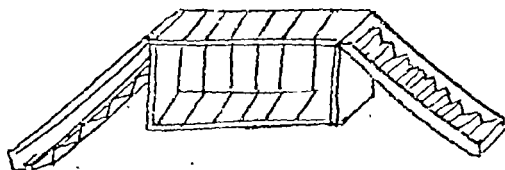
Balance Beam—एक तख्ता जो ४″ मोटा ४″ चौड़ा और १०′ लम्बा है, दो सन्दूकों के ऊपर रख दिया जा सकता है और दोनों ओर से चढ़ने के लिए छोटे बड़े सन्दूकों से सीढ़ी भी बनाई जा सकती है।

गुड़िया का पालना और गाड़ी—सन्दूक, गत्ते और पुरानी लम्बी टोकरी की सहायता से बनाया जा सकता है। इसी प्रकार टोकरी को पहिये और हत्ते चढ़ा देने से एक अच्छी गाड़ी बन सकती है।
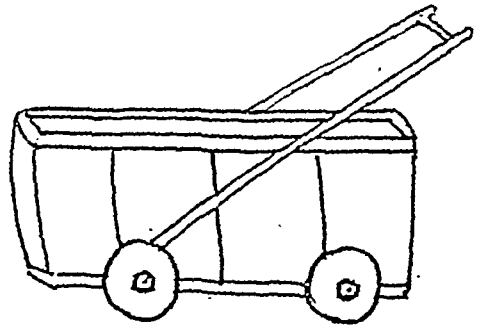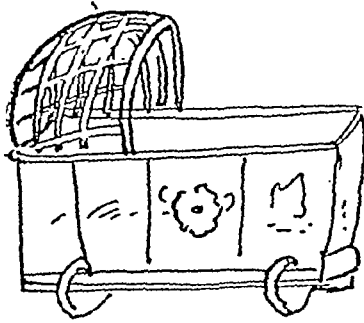
गुड़िया की आल्मारी—१५" × १४" × १०" लम्बे, चौड़े सन्दूक से बन सकती है। ८" की दूरी में खाने लगाए जा सकते हैं। ४" ऊँचे खम्भे में उन्हें चढ़ाया जा सकता है।

गुड़ियों के वस्त्र—गुड़ियों के कपड़े चित्ताकर्षक, पक्के टुकड़ों से जो धोए भी जा सकें, बनाये जायँ। ऐसे कपड़े जो पीठ की तरफ से खोले जा सकें, अच्छे होते हैं। बटन और बटन के छिद्र ऐसे होने चाहिएँ जिनको बालक ठीक तरह से खोल और चढ़ा सकें।

नाव—१' × ४' × १४" टुकड़े की बन सकती है जिसका कोना तिकोना काटा जाय। एक ३" × ६" × २" नाप का छोटा सन्दूक या डब्बा उसमें जोड़ देने से एक कमरा भी बन सकता है। निम्नलिखित चित्रों में विभिन्न प्रकार की नावें दी गई हैं जो आसानी से बन सकती हैं।
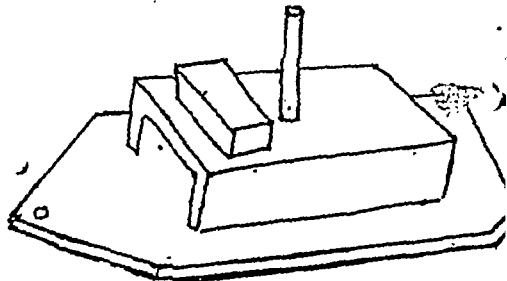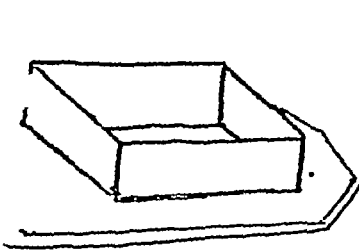
पुस्तक और तस्वीरें—पशु, फूल, तरकारी, फल, चिड़ियाँ, मोटरे, रेल, नाव, जहाज,हवाई जहाज विभिन्न प्रकार के बच्चे और उनके खेल कूदों के चित्र पुराने और नए पत्र-पत्रिकाओं में मिलते हैं। प्रौढ़ लोग इन्हें काटकर बालकों को दें, और बालक उनमें लेई लगाकर गत्ते में या अखबार की पुस्तक बनाकर उसमें चिपका दें। जिन कागजों में पारसल बाँधकर आते हैं, या पुराने समाचार पत्रों के मोटे कागज या पतले गत्तों से तसवीर चिपकाने की पुस्तक तैयार हो सकती है। १२″ × १४″ की पुस्तक अच्छी रहती है।

नकली घड़ी—नकली घड़ी द्वारा बालक समय देखना और १ से १२ तक गिनना तथा पहिचानना सीखता है। ऐसी घड़ी एक मोटे गत्ते या Plywood से बनायी जा सकती है। एक केन्द्र मानकर एक गोलार्द्ध बनाया जाय। इसके किनारे १२ छोटे-छोटे गोलार्द्ध बनाये जाँय। उनमें रंगीन कागज में १ से १२ तक की गिनती काटकर चिपकाई जाय। इसी प्रकार गत्ते की दो बड़ी और छोटी सुइयाँ भी चिपकाई जाँय।
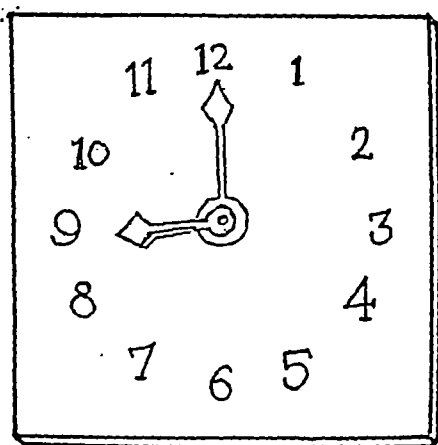
Play house—खेल-गृह बड़ी से बड़ी लकड़ी की पेटी का बनाया जा सकता है। इसमें दरवाजे, खिड़कियाँ इत्यादि भी बना दी जा सकती हैं। दरवाजे इतने बड़े हों जिसमें से बालक आ जा सके।

कपड़े—पुराने जूते, टोप, धूप के चश्मे, फटा मफलर, टाई और पुरानी साड़ी इत्यादि भी बालकों के वेष बदलने के काम में आते हैं। मकई के बालों से बहुधा बालक अपनी मूँछ दाढ़ी बनाते हैं। लिखने का तात्पर्य हय है कि हर एक गई गुजरी वस्तु से भी कुछ न कुछ काम लिया जा सकता है।

गुड़िया की चारपाई—खटिया इतनी बड़ी हो कि एक छोटा शिशु गुड़िया के साथ उसमें सो सके। साधारण तख्तों से यह बन सकती है। तख्ते, मेज Screws से कसे जा सकते हैं ताकि वे हटाये भी जा सकें। निम्नलिखित चित्रों से यह स्पष्ट हो जायगा।
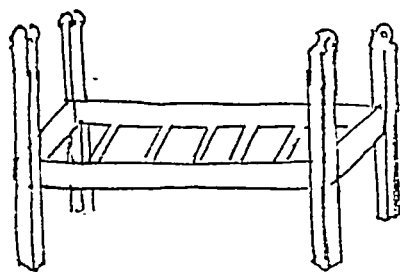
लाठी का घोड़ा—निम्नलिखित चित्र में लाठी का घोड़ा बनाया गया है। उसे जुराब और छड़ी की सहायता से बनाया गया है। जुराब को भूसे या कपड़ों के टुकड़े से भर देना चाहिए और छड़ी के मुट्ठे (मुठिया) में पहिना देना चाहिए। यदि कोई पुराने दस्ताने हों तो उनकी अँगुलियों से कान बनाये जा सकते हैं। आँख बटन से और लगाम रिबन इत्यादि से बनाया जाता है। चित्र (पृ० १२१ में) दिखाया गया है।
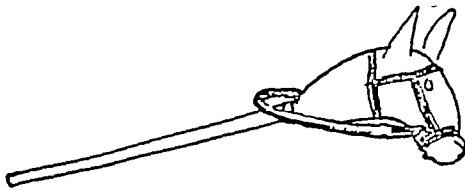
अन्य सामग्री

चढ़ने का सन्दूक—चारपाई में चढ़ने के लिए या कोई ऊँची चीज को उतारने के लिये एक छोटा सन्दूक चाहिए जिसे बालक आसानी से इधर उधर उठा सकें। एक छोटी सन्दूकची जो ६" × ६" × १५" नाप की हो रँगने से वह काम हो सकता है।

तौलिया रखने का डंडा—तौलिया रखने का डण्डा बच्चे के कन्धे की ऊँचाई के बराबर होना चाहिए। यदि एक ऐसा फ्रेम बना दिया जाय जिसमें दोनों ओर उचित दूरी पर छिद्र हों तो बालक अपनी आवश्यकतानुसार डण्डे को ऊँचा-नीचा कर सकता है। इसी फ्रेम में उसकी कंघी रखने और कपड़े टाँगने का भी हुक लगा दिया जाय तो ठीक है।
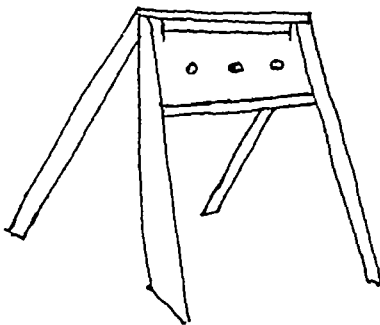
कपड़ा रखने और टाँगने की आलमारी—बड़े सन्दूक में दो खाने, ऊपर का बड़ा और नीचे का छोटा बनाने से काम चल सकता है। ऊपर तीनों तरफ हुक लगाये जा सकते हैं, जिनमें बालक अपने कपड़े टाँग सकता है जैसे नीचे चित्र में दिखाया गया है।
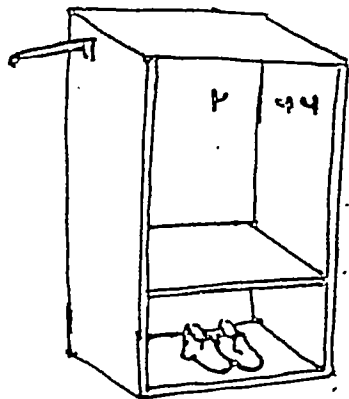
हमारे नवीन साहित्यिक प्रकाशन

(प्रकाशित एवं वितरण अधिकार प्राप्त)

रस-साहित्य तथा समीक्षायें	समीक्षा	'हरिऔध'	५)
कहानी का रचना विधान	,,	डा. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा	५)
प्रसाद की कवितायें	,,	सुधाकर पाण्डेय	५)
कामायनी-समीक्षा	,,	,,	३)
प्रसाद काव्य कोश	,,	,,	४)
हास्य की रूपरेखा	,,	डा० एस० पी० खत्री	६)
राधा का क्रम-विकास	,,	डा० शशिभूषणदास गुप्त	८)
लोक साहित्य प्रवेश	,,	डा० सत्येन्द्र	५)
भारतीय प्रेमाख्यान काव्य	,,	डा० हरिकान्त	१०)
हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	,,	त्रिभुवनसिंह एम० ए०	५)
आधुनिक साहित्य और कला	,,	महेन्द्र भटनागर	२॥)
यूरोपीय साहित्य	,,	विनोदशंकर व्यास	२)
डा० इकबाल और उनकी शायरी	,,	हीरालाल चोपड़ा	५)
फारसी साहित्य की रूपरेखा	,,	डा० हिकमत	२)
साकल्य	सा० निबन्ध	शांतिप्रिय द्विवेदी	४)
स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य	,,	डा० रामविलास शर्मा	३)
अतीत से वर्तमान	,,	राहुल सांकृत्यायन	५)
साहित्य धारा	,,	प्रकाशचन्द्र गुप्त	४)
राजस्थानी भाषा की रूपरेखा	भाषा साहित्य	पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	१।)
भारतीय संस्कृति : वैदिक-धारा		डा० मंगलदेव शास्त्री	७)
आपका शिशु	मनोविज्ञान	हेमांगिनी जोशी	२॥)
आधुनिक परिवाहन	यातायात	सुधाकर पाण्डेय	१॥)
उपहार	हास्यरस	बेढब बनारसी	१॥।)
धन्यवाद	,,	,, ,,	२)
दिगम्बर	उपन्यास	शांतिप्रिय द्विवेदी	२)

मुक्तिदान	उपन्यास	सिद्धविनायक द्विवेदी	२)
श्वेतपद्मा	,,	,, ,,	१॥।)
जीवन संग्राम	,,	नानक सिंह	५)
स्वर्णिम अतीत	,,	अ० मोहन लहरी	३॥)
बालू के टीले	,,	ब्रजेन्द्र खन्ना	५)
माँ	,,	श्रीमती पर्ल एस० बक	२॥)
निशा डूबती है	,,	जयप्रकाश शर्मा	२॥)
राजा रिपुमर्दन	,,	हर्षनाथ	३)
सीधे-सादे रास्ते	,,	देवीप्रसाद धवन	३॥)
चयनिका	कहानी-संग्रह	कंचनलता सब्बरवाल	२)
मधुकरी खण्ड १	,,	विनोदशंकर व्यास	३)
,, खंड २	,,	,,	३)
मकड़ी के जाले	,,	राजेन्द्र अवस्थी	२)
कहानी-मूल और शाखा	,,	सुधाकर पांडेय	२।)
गीतगुंज	कविता-सं०	'निराला'	१॥)
व्याकुल व्रज	,,	'हरिऔध'	॥।)
नीहारिका	,,	सुधाकर पांडेय	१।)
जो गाता हूँ	,,	,,	१।)
अंतराल	,,	महेन्द्र भटनागर	१।)
सम्राट् चन्द्रगुप्त	जीवनवृत्त	सत्यनारायण कस्तूरिया	३)
शांतिदूत बापू	,,	सै० कासिमअली	२॥)
संस्मरण और आत्मकथाएँ	,,	धूनीराम त्रिपाठी	१।)
अमेरिका में नेहरू	यात्राएँ	राजकुमार	१॥।)
चीन और नेहरू	,,	,,	१॥।)
नेहरू की रूस यात्रा	,,	राजकुमार	१॥)
नेहरू और भारतीय राजनीति	विवेचन	प्रमोद एम० ए०	३)
कौल-फैसल	,,	मौलाना 'आजाद'	१॥)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पो० बक्स नं० ७०, ज्ञानवापी, बनारस।